सरस्वती सिरीज़

जीवन-ज्योति

आठ आना

Dear Readers,

Hasan ulteb 8

सरस्वती-सि

जीवन-ज्योति

विजय वर्मा

Vijay Verma

प्रकाशक
इंडियन प्रेस लिमिटेड
प्रयाग

सरस्वती-सिरीज़

स्थायी परामर्शदाता—डा० भगवानदास, परिडत अमरनाथ झा, भाई परमानंद, डा० प्राणनाथ विद्यालङ्कार, श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार, पं० द्वारिका-प्रसाद मिश्र, संत निहालसिंह, पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, बाबू संपूर्णानन्द, श्री बाबूराव विष्णुपराड़कर, परिडत केदारनाथ भट्ट, ब्योहार राजेन्द्रसिंह, श्री पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, श्री जैनेन्द्र कुमार, बाबू वृन्दावनलाल वर्मा, सेठ गोविन्ददास, परिडत चेत्रेश चटर्जी, डा० ईश्वरीप्रसाद, डा० रमाशंकर त्रिपाठी, डा० परमात्माशरण, डा० बेनीप्रसाद, डा० रामप्रसाद त्रिपाठी, परिडत रामनारायण मिश्र, श्री संतराम, परिडत रामचन्द्र शर्मा, श्री महेश-प्रसाद मौलवी फ़ाज़िल, श्री रायकृष्णदास, बाबू गोपालराम गहमरी, श्री उपेन्द्र-नाथ "अश्क", डा० ताराचंद, श्री चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, डा० गोरखप्रसाद, डा० सत्यप्रकाश वर्मा, श्री अनुकूलचन्द्र मुकर्जी, रायसाहब परिडत श्रीनारा-यण चतुर्वेदी, रायबहादुर बाबू श्यामसुन्दरदास, परिडत सुमित्रानन्दन [illegible] पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० नन्ददुलारे वाजपेयी, पं० हजारीप्र[illegible] द्विवेदी, परिडत मोहनलाल महतो, श्रीमती महादेवी वर्मा, परिडत अयोध[illegible] सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', डा० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, डा० [illegible] वर्मा, बाबू रामचन्द्र टंडन, परिडत केशवप्रसाद मिश्र, बाबू कालिदास कपूर, इत्यादि, इत्यादि।

रहस्य-रोमांच

जीवन-ज्योति

अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं पर प्रकाश डालनेवाला रोचक उपन्यास।

विजय वर्मा

१

राजकुमार चन्द्रसेन की पहली समुद्र-यात्रा थी। दो दिन चारों ओर समुद्र ही समुद्र देखने के बाद तीसरे दिन वे बहुत बेचैन हो गये। उन्हें ऐसा जान पड़ता था कि अब बिना स्थल देखे वे किसी तरह स्वस्थ दशा में नहीं रह सकते। इला पर उन्हें बहुत झुँझलाहट आ रही थी, जिसने अन्त में क्रोध का रूप धारण कर लिया। तब वे जहाज़ की दूसरी मंज़िल पर गये। वहाँ इला पुस्तकालय में बैठी भावी दुनिया के बारे में एच० जी० वेल्स, बर्नार्ड शा, रोमन रोलाँ, रवीन्द्र और गांधी आदि संसार-प्रसिद्ध विचारकों के लेखों का एक संग्रह पढ़ रही थी। यह देखकर चन्द्रसेन को, न जाने क्यों, और क्रोध आया। उन्होंने उसके पास जाकर धीरे से कहा—"तुम मुझे कहाँ-कहाँ लिवा ले जाना चाहती हो? ऐसे विचित्र प्रेम-प्रदर्शन की तो मैंने कभी कल्पना भी न की थी।"

इला ने पुस्तक बन्द कर दी। चन्द्रसेन की ओर देखकर वह थोड़ा-सा हँसी। तब बोली—तीसरी मंज़िल पर चलिए। टेनिस खेली जाय।

"मैं सब खेल दो दिनों में ही भूल गया। सच बताओ, तुम्हारा असली इरादा क्या है?"

"अगर इतना अधिक सन्देह मुझ पर है तो यह यात्रा करनी ही न थी। आपने कितनी बार कहा था कि अकेले मेरे साथ आप दो ज़िन्दगियाँ काट सकते हैं। मैं अकेली नहीं आई, यही ग़नीमत है।"

अब चन्द्रसेन खुल पड़े—"हाँ, ऐसा ही कहोगी? और कौन है मेरे साथ? न हो तो इसी अनन्त, असीम समुद्र में मुझे फेंक दो और अगर

मेरे हाथ-पैर कुछ हिलें तो यही चिल्लाना कि ऐसा था तो मुझे यह यात्रा ही नहीं करनी थी। जब क्रूरता भी इसी समुद्र की तरह हो जाती है तब--"

"तब उसका भार राजकुमार भी नहीं सँभाल सकते ! क्यों न ?" बात काटकर इला ने कहा और वह फिर हँसी।

चन्द्रसेन--"देखो, रूप के अतिरिक्त अपनी विद्वत्ता, तीक्ष्ण बुद्धि और सार्वजनिक सेवा-भाव से तुमने मुझे अपनी ओर ऐसा अधिक आकर्षित किया है कि मैंने इस यात्रा के बारे में तुम्हारी सब बातें मान लीं। पर क्या तुम मेरे साथ समवेदना भी न प्रकट करोगी ?"

"क्यों न करूँगी ? किन्तु अभी वह समय नहीं आया।"—इला ने गम्भीर स्वर में कहा।

"अभी और भी कड़ा समय आवेगा ?"

"कड़ा आप उसे क्यों कहते हैं ? कल हम लोग अदन पहुँच जायगें। एक दिन आवेगा जब आप मुझे इस यात्रा के लिए असीम धन्यवाद देना चाहेंगे, पर तब आप राजा या राजकुमार न रह जावेंगे !"

"फिर क्या हो जाऊँगा ?"

"वही जो कई बार कह चुकी हूँ---मनुष्य, मानव प्राणी !"

"और अभी क्या हूँ ?"

"राजकुमार !"

"क्या राजकुमार या राजा मानव प्राणी नहीं है ?"

"जान या अनजान में, प्रसन्नता से या बेबसी से मनुष्यता के विरुद्ध काम करनेवाले लोगों को भी मनुष्य कहना मनुष्य नाम को कलंकित करना ही होगा।"

"पर जिसे तुम अहंकार से या अज्ञान से अनुचित कहती हो, और सब तो ऐसा न मानेंगे। मेरी व्यक्तिगत रूप में तुम उड़ा सकती हो, क्योंकि मेरे बारे में अत्यधिक जानती हो। ा तुम्हें सभी के लिए ऐसा कहना चाहिए या ऐसा मानना ...हिए?"

"कौन क्या मानता है, और हमें क्या मानना चाहिए, यह सब आप इस यात्रा में स्वयं देख लेंगे। आप ऐसे राजा न रहकर, लाखों-करोड़ों के हृदयों पर सच्चा शासन कर सकेंगे। क्या वह इससे बढ़कर न होगा?"

'तुम मुझे किन लोगों के पास ले चलोगी?"

"जिनके पास आपको यह सब मालूम हो जावेगा।"

"इन्हीं लोगों के, जिनके लेख पढ़ रही थीं?"

इला और अधिक हँसी। "पुरुषों से नहीं, कुछ स्त्रियों से ही आपको बहुत कु सीखना-समझना होगा।"—उसने कहा।

सहसा ऐसी मादक हँसी उसके शुभ्र अधरों पर और उसकी विशाल आँखों में दिखाई दी कि चन्द्रसेन सब कुछ भूलकर उसकी ओर कुछ देर चुपचाप देखते रह गये। इस जादू पर कभी कुछ भी ज़ोर उनका नहीं चलता। सँभलने पर वे बोले—"तो क्या तुम मेरी गुरु या उपदेशिका बनने जा रही हो?"

इला ने गम्भीरता से कहा—"नहीं, केवल मित्र।"

इसी समय उनके एक साथी ने आकर सूचना दी कि जहाज़ का एक प्रॉपलर ग़ायब हो गया है, अतः जहाज़ की गति में कमी हो जायेगी और वह अदन बन्दर पर चार-पाँच घंटे देरी से पहुँचेगा।

चन्द्रसेन ने कहा—"अभी क्या! लालसागर पहुँचते-पहुँचते दोनों प्रॉपलर गुम हो जावेंगे, इंजन का चलना बन्द हो जावेगा।"

इला ने बीच में ही कहा—"और हम लोग सिन्धबाद की तरह एक अजीब आफ़त में फँस जायँगे। यह तो अच्छा ही होगा।"

चन्द्रसेन—"अभी बड़ी वीरांगना बन रही हो, अगर सचमुच विपत्ति आवे तो हममें से सबसे पहले तुम्हीं चिल्लाना शुरू करोगी।"

इला ने मुँह बनाकर कहा—"बिलकुल ग़लत। मैं उन देशों में नहीं बड़ी हुई हूँ जहाँ परदे में या बुर्के में ज़िन्दगी की स्वाभाविक बाढ़ और निर्भयता रोकी जाती हैं। चलिए, टेनिस खेलिए।"

वह उठकर खड़ी हो गई।

"तुम्हें टेनिस खेलने की पड़ रही है, पर मुझे मतली आ रही है!"

"मन तो नहीं चल रहा है? असली चीज़ मन ही है।"

"स्त्री होकर तुम ऐसा कहती हो? असली वस्तु मन है या हृदय?"

"अच्छा हृदय ही सही, पर उसे भी आपमें कहीं अधिक शक्तिशाली रूप में मैंने देखा था।"

"हृदय और मन दोनों की अवस्थायें बदलती रहती हैं।"

"किन्तु पुरुष तो वही रहता है?"

"पुरुष! क्या स्त्री वैसी ही नहीं रहती?"

"मेरा यह मतलब नहीं है—सभी लोगों से मेरा आशय था।"

"हाँ, तो ठीक है—सभी व्यक्ति कुछ न कुछ बदलते रहते हैं—बौद्धधर्म के अनुसार तो—"

"ओह! वह सब मुझे न सुनाइए। आपके इन धर्मों का नाम सुनकर ही मैं भागना चाहती हूँ। बोलिए, टेनिस खेलिएगा या नहीं? उससे यथेष्ट शक्ति आ जावेगी और मतली-वतली सब दूर हो जावेगी।"

चन्द्रसेन ने कहा—"चलो, खेलूँगा। शायद कुछ विशेष बात है।

इला—भला, यह तो आप समझ गये!

चन्द्रसेन इसके उत्तर में थोड़ा हँसे और तब वहाँ से उठकर टेनिस खेलने के लिए इला के साथ चले गये।

अन्तिम बातें वहुत धीमे स्वर में हुईं, फिर भी एक व्यक्ति के कान उधर ही लगे थे।

२

जब राजकुमार इला के साथ चले गये, तब वह आदमी जो इनकी बातों की ओर अपना ध्यान लगाये था, उठकर वहाँ से चला गया। वह अपने कैबिन में जाकर देशी शराब की एक बोतल निकालकर, अपने जीवन को—चार्वाक आदि के सिद्धान्तानुसार धन्य करने लगा। आज-कल के कितने ही वैज्ञानिकों के भी शब्दों में उसके काम को 'जीवन की परिपूर्णता करनेवाला' कह सकते हैं। जब कुछ नशा छा गया तब वह अपने आप धीरे-धीरे बड़बड़ाने लगा—"ज़रूर यही वह सुन्दरी है। इस समय यह हिन्दुस्तानी साड़ी पहनकर और हिन्दुस्तानी भाषा बोलकर अपने आपको छिपाना चाहती है। पर है ज़रूर वही। अगर मेरे पास वह फोटो होता—"

उसने जेबों में हाथ डालकर कुछ काग़ज़ निकाले पर उनमें कोई फोटो न था। उन काग़ज़ों को उसने ज्यों का त्यों रख लिया। फिर उसने एक छोटा-सा बेग खोला और उसमें से सब चीज़ें बाहर निकालीं। उनमें कई फोटो भी थे। उन्हीं में से एक को निकालकर वह कुछ देर तक देखता रहा और तब बोला—"ज़रूर यही है। अब कोई शक़ की बात नहीं। हम लोगों का इतने समय का परिश्रम सफल हो गया। यह अपने आप पकड़ाई दे गई। एक राजकुमार को उल्लू बना रही है। मैंने सुना था कि यहाँ के राजकुमारों में से अधिकांश ऐसे ही हो गये हैं। अब प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। कोगाको कहता था कि अब इन राजकुमारों में कुछ ऐसे होशियार हो गये हैं कि योरप के राजकुमारों के भी कान काट सकते

हैं। वह इस राजकुमार की भी बड़ी तारीफ़ करता है। पर वह सब बिलकुल भूठ है। कोगाको इनसे मिला हुआ है। वह जापानी है—यह हिन्दुस्तानी। दोनों एशिया के हैं। और शायद दोनों बौद्ध-धर्म के मानने-वाले हों। मैं कोगाको के चक्कर में आनेवाला नहीं। इन दोनों को पकड़वाये बिना न रहूँगा।

थोड़ा और नशा आने पर उसने आँखें बन्द कर लीं और तनिक ही देर में वह देखने लगा कि उसन राजकुमार और इला दोनों को पकड़वा दिया है और उसे इस काम के लिए पुरस्कार मिल रहा है!

उसी समय वहाँ कोगाको आया। उसने इसे सोते देखकर पहले तो लौट जाना चाहा किन्तु इसके पास कई फोटो पड़े देखकर आगे बढ़ गया। तब उसने देखा कि उनमें एक फोटो ऐसा भी है जो इला का ही मालूम होता है। उसमें वह योरपीय पोशाक में है। उसने उसे उठा लिया। उसके नीचे इटैलियन भाषा में जो कुछ लिखा था उसे पढ़कर कोगाको आश्चर्य में आगया और मन ही मन कहने लगा—ऐसा कैसे हो सकता है? इला को तो मैं ऐसी नहीं समझता था! अगर इसमें जो कुछ लिखा है, वह ठीक है, तब तो चन्द्रसेन इसके हाथ में बिलकुल बेवक़ूफ़ बन रहा है। वह बुरी तरह फँसने जा रहा है। मैं उसे बचाने की कोशिश करूँगा। इससे मेरा दुहरा लाभ होगा।

× × ×

उसी दिन से कोगाको ने इस इटली के आदमी से अपनी और घनिष्ठता की। वह उसके साथ कितनी ही चीजें खाने और कई प्रकार की शराब पीने लगा। दो ही दिनों में उसे मालूम हो गया कि उस युवक

का सम्बन्ध इटली की गुप्त पुलिस से है और वह इला की खोज सालों से कर रहा था।

इतना ही नहीं, एक दिन नशे की झोंक में वह कह उठा—दोस्त कोगाको! अब मैं प्रतिदिन तुम्हें एक कहानी सुनाया करूँगा। आज अभी उसे प्रारम्भ करता हूँ। सुनो—सब देशों में कई राजनैतिक दल होते हैं। इटली में इस प्रकार के दो दलों का जोर है। कुछ साल हुए इटली के 'लाल क़मीज़वाले' दल का एक विशेष आदमी जर्मनी की राजधानी बर्लिन से लौटता हुआ, घूमता-घामता मोन्टीकार्लो आ रहा था। कैले से वह 'ब्लू ट्रेन' में सवार हुआ। उसने अपने आस-पास के डिब्बे भी अपने लिए रिज़र्व करा लिये, पर एक डिब्बा एक अँगरेज पहले से ले चुका था, इसलिए उसे यों ही रहने दिया। किन्तु जब वह खाना खा रहा था तब उस अँगरेज़ के सिवा उसे एक और व्यक्ति वहाँ दिखाई दिया। उसने अँगरेज़ को बड़े ध्यान से देखा और अँगरेज़ ने जितनी बार अपनी निगाह उस पर डाली, उसे अपनी ही ओर देखते पाया। वह दृष्टि किसी प्रेमिका की न थी, उस दृष्टि में एक अद्भुत भाव था—मानों देखनेवाले को यह विश्वास ही नहीं होता था कि वहाँ इस आदमी का आ जाना सम्भव था।"

कोगाको ने कहा—"वह भी 'लाल कमीज़' वाले दल की थी?"

इटैलियन युवक हो-हो करके हँस उठा। फिर बोला—"बुद्धू लोगों की तरह की बात तुम क्यों कह दिया करते हो? उसी दल की होती तो इतना बुरा और आश्चर्यप्रद प्रभाव उस पर क्यों पड़ता? वह हमारे दल की थी! तुम विना बोले-चाले कहानी सुनते जाओ।"

वह फिर कहने लगा--"अन्त में इस अँगरेज़ ने उस इटैलियन युवक का ध्यान इसकी ओर करके कहा--क्या आप इस सुन्दरी को जानते हैं?"

पहले तो उसने उत्तर ही न दिया, फिर कहा--"मेरा और आपका ऐसा परिचय कब का है कि मैं आपके ऐसे प्रश्न का उत्तर देना चाहूँ?"

इतना रूखा उत्तर सुनकर वह अँगरेज़ चुप हो गया। थोड़ी देर में जब वह रेल के अपने डिब्बे में गया, तब उसने देखा कि वही इटैलियन युवक उसके कमरे में चला आया। अँगरेज़ को पहले तो कुछ बुरा मालूम हुआ पर तुरन्त ही उसने इसे अपनी बुराई महसूस करके अपने को सँभाल लिया, उसे सादर बिठाया और सिगरेट दी।

तब उस इटैलियन ने उससे कहा—"आप मुझे क्षमा कीजिएगा, किन्तु मैं बड़ी ही विपत्ति में पड़ गया हूँ। इसी लिए मैं आपके प्रश्न का कोई उचित उत्तर भी नहीं दे सका। जिस सुन्दरी को आपने मुझे दिखाया था उसका सम्बन्ध इटली की गुप्त पुलिस से है और इस ट्रेन में वहाँ के गुप्त पुलिस का सरदार भी मौजूद है। मेरा ज़िन्दा रह जाना सम्भव नहीं है।"

अँगरेज ने चौंककर पूछा--"क्यों? क्या ये सब आपके ही पीछे पड़े हैं?"

इटैलियन ने कह दिया—'हाँ, यही बात है।' मेरे पास कुछ महत्त्वपूर्ण काग़ज़ हैं। उन्हें ये ले लेना चाहते हैं। उन काग़ज़ों से एक अन्तर्राष्ट्रीय षड्यंत्र का भंडाफोड़ हो जाता है। यह इन्हें पसन्द नहीं।

अँगरेज ने कहा—"तो आप मुझसे क्या चाहते हैं ? मैं तो इटली या किसी भी मुल्क की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं रखता, न रखना ही चाहता हूँ ।"

इटैलियन ने कहा—"इसी लिए तो मैं आप पर विश्वास कर सकता हूँ। जिनका किसी खास राजनीति से सम्बन्ध हो जाता है, वे किसी न किसी दल में मिल जाते हैं और तब वे सत्य को बहुत ही संकुचित दृष्टि से देख सकते हैं। उसके एक पहलू को ही वे एक-मात्र सत्य समझने लगते हैं। इसी से सारी हानियाँ होती हैं। मैं चाहता हूँ कि आप इस पैकेट को ले लें और मोण्टीकार्लो में इसे उसको दे दें जो उन संकेतों का प्रकट कर सके, जिन्हें मैं आपको बतलाय देता हूँ।"

यह कहकर उसने उस पैकेट को निकालकर इस अँगरेज को दे दिया। अँगरेज़ ने उसकी इस अवस्था से प्रभावित होकर और ऐसे काग़ज़ों के प्रति स्वाभाविक कौतूहल के कारण भी, उस पैकेट को अपने कोट में छिपाकर रख लिया। तब उस इटैलियन ने सब संकेत इस अँगरेज को अच्छी तरह समझा दिये ।

इसके बाद वह आदमी हार्दिक धन्यवाद देकर अपने डिब्बे में चला गया ।

रात के तीन बजे उसी सुन्दरी ने आकर इस अँगरेज को जगाया। वह बहुत भयभीत जान पड़ती थी। उसने कहा कि डिब्बे में से कराहने की आवाज़ आ रही है और यह जान पड़ता है कि कोई किसी को मार रहा है।

दोनों उतरकर उस डिब्बे के बाहर गये, जिसमें वह इटैलियन था। उन्होंने उसे बिलकुल बन्द पाया और उनके आवाज़ें देने पर भी कुछ फल

न हुआ। एक ओर उन्हें कुछ रक्त दिखाई दिया। तब उन्होंने ट्रेन रुकवा दी।

डिब्बे के खोले जाने पर उन्होंने देखा तो वह आदमी मरा पड़ा था।

कोगाको—"उसी सुन्दरी ने मार डाला था?"

इटैलियन ने कहा—'छि:, छि:, कैसी भद्दी बात तुम सोचते हो? अभी स्त्रियाँ इतनी गई-बीती नहीं हो गई हैं! मारने और खून करने के कामों को बहादुरी समझना पुरुष की ही बुद्धि की विशेषता है!' उसको इस सुन्दरी ने छुआ भी न था। वह तो सचमुच डरी हुई थी और उस आदमी के मुरदा शरीर को देखकर तो इतना अधिक डर गई कि जब ट्रेन फिर चलने को हुई तब वह उस अँगरेज़ को अपने ही डिब्बे में लिवा ले गई।

कोगाको—बड़ी छटी हुई थी।

इटैलियन—सो तुम चाहे जो कुछ कहो, पर जब वह वहाँ उसके पास बैठी तब उसके होश-हवास ठिकाने न थे। उस अँगरेज़ ने उसकी यह दुर्दशा देखकर उसे थोड़ी-सी शराब पीने के लिए दी और फिर सिगरेट देकर अपने बारे में बातें करने लगा। वह टेनिस का मशहूर खिलाड़ी था।

कोगाको—"अच्छा, चन्द्रसेन की तरह वह भी टेनिस का खिलाड़ी था!"

इटैलियन—"चन्द्रसेन तो अभी पिछले साल कुछ प्रसिद्ध हुआ है। वह योरप भर में मशहूर था। जब इटली की गुप्त पुलिस के सरदार को उस युवक के पास काग़ज़ की एक चिट भी न मिली तब

वह बहुत झल्लाया। उसने इस अँगरेज का पीछा करने का निश्चय कर लिया।

इन दोनों ने आश्चर्य के साथ देखा कि इसी समय इला ने वहाँ आकर कहा--"चलिए, चलिए, आप लोगों को राजकुमार बुला रहे हैं।"

दोनों ने कहा--"आप उनसे हमारी ओर से बहुत-बहुत क्षमा-याचना करने की कृपा करें।"

वह चली गई।

कोगाको ने कहा--"इसने आपकी बातें सुन ली हों तो?"

इटैलियन ने कहा--"तो क्या? मैं तो तुमसे इसी लिए कह रहा हूँ, जिससे तुम इसे इन राजकुमार को सुना सको। समय आने पर इला को भी सब कुछ बतलाया जायेगा। अब आज जाओ। शेष कहानी फिर सुनाऊँगा।"

कोगाको उठकर चला आया।

बाहर आकर उसने देखा--इला खड़ी हुई है।

३

प्रेमी और प्रेमिका की पहले की अवस्थाओं और उस अवस्था में आकाश-पाताल का अन्तर होता है जब प्रेमिका अपने पिता, अपने भाई, अपनी बहन आदि को छोड़कर प्रेमी के साथ भाग खड़ी होती है। यदि वह प्रेमी धूर्त या दुष्ट स्वभाव का हुआ तो यही समय होता है जब वह इस रूप में प्रकट हो जाता है। क्योंकि अब उसके लिए धूर्ततापूर्ण मीठे शब्दों की आवश्यकता की जगह अपने इस स्वभाव को दिखलाने का सुअवसर होता है। अब वह प्रेमिका चाहे जितना पछतावे और रोवे पर उसके चंगुल से छूट जाना उसके लिए सहज नहीं रह जाता। घरवाले उसी को दोष देंगे, समाज उसे ही अपराधिनी समझेगा, धर्म उसे ही दंडित करेगा और स्वयं वह भी इन सब प्रहारों के कारण अपने आपको ही सबसे अधिक पतिता समझने लग जायेगी। ऐसी अवस्था में वह या तो आत्म-हत्या करना चाहेगी या यदि किसी तरह सम्भव हुआ तो इन सबको छोड़कर दूसरे ही समाज में सम्मिलित होना चाहेगी। लोग इसे बराबर देखते आते हैं। पर राजकुमार चन्द्रसेन की अवस्था इससे सर्वथा विपरीत थी। उनकी प्रेमिका कोई भारतीय स्त्री थी भी नहीं। क्या इसी से ऐसी बात थी ?

जो हो, जब तक चन्द्रसेन राजकुमार की भाँति अपने देश में घूम रहे थे तब तक वे अपने को वैसा ही स्वतंत्र समझते थे जैसा कि प्रेमी के साथ भागने से पहले कोई विशुद्ध प्रेमिका अपने को समझ सकती है। इला उनसे मिला-जुला करती थी और वे जब-तब इला के साथ नैनीताल,

काश्मीर आदि स्थानों में महीनों रह चुके थे। किन्तु उन्होंने अपने आपको कभी किसी तरह परतंत्र नहीं समझा था।

किन्तु अब इस जहाज़ पर आकर प्रस्थान कर देने पर सब कुछ पलट गया। उन्हें स्पष्टतः जान पड़ा कि उनका सब कुछ छूट गया और उन सबका स्थान इला ले लेना चाहती है। वे अकेले नहीं आये थे। उनके साथ उनके चार 'सहायक' थे, फिर भी उन्होंने अपने को असहाय-सा समझा—वैसा ही असहाय जैसा घर से भागी हुई प्रेमिका होती है। इस प्रकार प्रेमी होते हुए भी उनकी अवस्था उसके विरुद्ध एक ऐसी प्रेमिका की-सी हो रही थी।

उन्हें जहाज के ऊपरी हिस्से में ले जाकर इला ने जो कुछ कहा वह तो उन्हें ठीक उसी प्रकार का जान पड़ा जैसे कोई धूर्त प्रेमी अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो गया हो।

उसने कहा—"आपने इस जहाज़ पर आकर अच्छा नहीं किया, क्योंकि इस पर इटली की गुप्त पुलिस के लोग हैं। वे, जान पड़ता है, मुझे सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। सम्भव है, कभी किसी स्त्री ने जिसकी शक्ल मुझसे कुछ मिलती रही हो, कहीं कुछ ऐसा काम किया हो जो उनकी गवर्नमेंट को पसन्द न आया हो, या जिससे उन लोगों के दल को, जो इस समय इटली-गवर्नमेंट का कर्णधार है, कुछ हानि होने की संभावना समझी गई हो। इसी से गुप्त पुलिस को उसकी तलाश में लगा दिया गया होगा। सभी गवर्नमेंटों का यही ढंग होता है।

राजकुमार ने कहा—"ऐसी व्यर्थ आशंका तुम्हारे मन में क्यों आई? तुम तो मुझे टेनिस के खिलाड़ी के रूप में ही योरप ले चल रही हो, न कि एक राजकुमार की भाँति। इसी लिए इस साधारण जहाज

को ही पसन्द किया गया था। मुझसे तो अभी तक यहाँ केवल एक युवक से कुछ विशेष बातचीत हुई है--वही जो नीचे बैठा था--जापानी युवक--कोगाको--।"

राजकुमार ने देखा, उसका नाम लेते ही इला का मुख विवर्ण हो गया।

उन्होंने कहा--"क्या तुम कभी इटली के किसी नगर में रही हो?"

इला के मुख पर और भी स्याही दौड़ गई। उसने कहा--"यह सब जानकर आप क्या करेंगे? अगर आप जानना ही चाहेंगे तो मैं वहीं इटली की राजधानी रोम में ये सब बतला सकूंगी, अगर कभी वहाँ जाना ही पड़ा।"

"तुम मुझसे क्या चाहती हो?"

इला--"यही कि आप उस इटली देशवाले के साथ या इस जापानी के साथ अपना कोई विशेष सम्बन्ध न करें, बल्कि जहाँ तक सम्भव हो, इन दोनों से दूर ही रहें। मुमकिन है, वे मुझ पर सन्देह करके आपको कुछ हानि पहुँचाने का प्रयत्न करें।"

"किन्तु कोगाको और उस इटैलियन आदमी से क्या सम्बन्ध है?--और क्या मेरा उनसे कोई विशेष सम्बन्ध हो सकता है?"

"कोगाको उस इटैलियन का गहरा मित्र मालूम होता है-- जैसे दोनों किसी षड्यंत्र की तैयारी में लगे हों!"

"मैंने भी तो उन दोनों को देखा है--मैं तो ऐसा भाव अपने मन में कभी नहीं ला सका।"

"आपको एक तो अपना देश छूटने का स्वाभाविक रंज है, जैसा प्रत्येक हिन्दुस्तानी को होता है, क्योंकि उनका संसार अब भी बहुत संकीर्ण है; दूसरे आपको समुद्री मतली की वजह से परेशानी है!"

"मैं तो समझता हूँ कि अगर तुम्हारी आशंका ठीक है तो मुझे कम से कम कोगाको से अपनी घनिष्ठता बढ़ा लेनी चाहिए!"

"कदापि नहीं! किसी भी जापानी का विश्वास करना किसी हिन्दुस्तानी के लिए ठीक न होगा! देखिए न, उन्होंने अपने पड़ोसी और अपने धर्मवाले चीन के साथ क्या किया?"

राजकुमार ने इला की घबराहट को देखा और हँसकर कहा--"तुम लोग अत्यधिक भावुक हो। अगर जापानी और चीनी बौद्ध हैं, तो क्या जर्मन और अँगरेज़ या फ़्रांसीसी और इटैलियन ईसाई नहीं हैं? क्या इनमें कम लड़ाइयाँ हुई हैं? एक-से धर्मवाले ज़मीन और धन के लिए आपस में कब नहीं लड़ा करते? पर क्या किसी भी देश के सब मनुष्य बुरे होते हैं? गवर्नमेंट थोड़े-से ही लोगों के हाथों में रहती है। उनके पीछे बीस-तीस लाख आदमियों का सक्रिय दल मान लिया जावे तब भी यह संख्या पाँच-सात करोड़ के आबादीवाले देशों में कितने प्रतिशत पड़ेगी? सच्चे धार्मिक लोग तो शान्तिवादी ही होते हैं। यह बात दूसरी है कि वे अपने भाव को जनता पर प्रकट न कर पावें।

इला—इस समय आबादी के कारण नहीं, संगठन और युद्ध के लिए यान्त्रिक तैयारियों के कारण प्रत्येक देश का प्रधानत्व है। चालीस करोड़ जनसंख्यावाला चीन जापान के सामने क्या कर सका?

इन सब बातों से मानो ऊबकर राजकुमार ने कहा—राजनीति की नहीं, इस समय टेनिस और प्रेम की ही बातें मैं तुमसे सुनना और करना चाहता हूँ।

पर भीतर ही भीतर उसकी अशान्ति बढ़ गई थी।

४

कोगाको ने बेतकल्लुफ़ी के साथ बातें करनी शुरू कर दीं। इससे चन्द्रसेन ने भी अपनी अनेक बातें उसे बतला दीं और उसमे घनिष्ठता ही करनी चाही।

जब जहाज़ अदन बन्दर के निकट पहुँचनेवाला था तब कोगाको इनके केबिन में आकर बैठ गया और दो-चार अन्य बातें करने के बाद कहने लगा--"क्या आप अदन देखने चलेंगे?"

चन्द्रसेन ने कहा—"हाँ, इला की इच्छा है कि हम लोग 'होटल डि योरप' में चलें। वहाँ कोई महाशय हम लोगों से मिलने आवेंगे। वे कहती हैं कि अदन में तालाब, नमक के कारखाने तथा कोलतार की सड़कें आदि देखने योग्य वस्तुएँ हैं। उनसे यह भी सुना है कि पानी की कमी को पूरी करने के लिए यहाँ एक विशेष तालाब बनवाया गया है।"

कोगाको ने प्रसन्न होकर कहा—"हाँ, ज़रूर देखिए, ये सब चीज़ें देखने लायक़ हैं। अपने देश के लोगों को इन सबका और यहाँ के निवासियों का पूरा हाल बतलाने योग्य आपको बनना चाहिए, जिससे सदियों पहले की भाँति अब फिर वे दुनिया भर में अपने जहाज़ों पर घूमने की इच्छा करें। अभी यह कल की बात है कि आपके देश के लोगों के बनाये हुए जहाज अँगरेज़ों के जहाज़ों से कहीं बढ़िया होते थे, इसका वर्णन अँगरेज़ों ने ख़ुद ही किया है। हिन्दुस्तान में लोहे के स्थान पर पीतल का प्रयोग होता था, जिससे यहाँ के बने हुए जहाज़ों मे मज़बूती कहीं अधिक रहती थी। अस्तु, मैं भी आप लोगों के साथ अदन चलूँगा।

"बड़ी खुशी की बात है। पर इला तुमसे बहुत घबराती हैं।"—चन्द्रसेन ने कहा। कोगाको ने हँसकर उत्तर दिया—"मैं जापानी हूँ इसलिए।"

"जापानियों से घबराहट क्यों?" चन्द्रसेन ने पूछा।

एशिया के एक किनारे जापान वैसा ही छोटा-सा टापू है, जैसा यूरोप के एक किनारे अँगरेज़ों का देश है। अँगरेज़ों के देश में तो स्काटलैण्ड, इँगलैण्ड और वेल्स, तीन अलग-अलग ऐसे भाग हैं जिससे वहाँ बहुत कठिनाई से एकता हो सकी है और पूरी एकता अब भी नहीं है, पर जापान ऐसा देश नहीं है। इतना ही नहीं, अँगरेज़ों ने जितनी उन्नति दो-तीन सौ वर्षों में की है, उतनी जापान ने सौ वर्ष से भी कम में करके दिखा दी। इससे केवल अँगरेज़ों को ही नहीं, कई यूरोपीय और अमेरिकन राष्ट्रों को भी हमसे ईर्ष्या हो गई और वे लोग हमसे घबराने लगे। उनके देशों की स्त्रियाँ आपके देश की स्त्रियों की तरह तो हैं नहीं, इसलिए उन्हें भी हमें देखते ही घबराहट होती है।

"इला का स्वभाव तो ऐसा नहीं है।"

किसी भी व्यक्ति के स्वभाव के अनेक पहलू होते हैं और वे अलग-अलग हालतों में दिखाई देते हैं। आपने इला को अभी तक कई परिस्थितियों में देखा कहाँ है? अब इस यात्रा में आप उन्हें बहुत-कुछ देख-समझ सकेंगे। फिर भी ऐसा न मान लीजिएगा कि आपने उन्हें सब तरह से देख लिया और उनके स्वभाव को बिलकुल समझ गये! अगर वे अँगरेज़ों के देश की हैं तो साधारण स्वभाव की हो ही नहीं सकतीं।

चन्द्रसेन हँसकर बोले—यह तो बहुत कठिन बात है। इतना देखकर भी मैं अपने को मूढ़ ही समझता रहूँ, यह मुझसे न होगा!

कोगाको भी हँसे। 'आप तो इसी समय उनके स्वभाव का पूरा जानकार अपने आपको समझते हैं? कम से कम ऐसा तो न कीजिए।"

"हाँ, यह ठीक है। मुझे स्वयं ही ऐसा मालूम होने लगा है कि इला कम रहस्यमयी नहीं है और जान पड़ता है कि अदन बन्दर में उतर कर उस होटल में, जहाँ किसी सज्जन से मुझसे मिलने का प्रबन्ध है, और रहस्यों का भी नये ढंगों से सामना होगा।"

"ऐसा आप क्यों समझते हैं? क्या आप उन्हें जानते हैं?"

"नहीं, मैं नहीं जानता। इला ने ही मुझसे कहा है कि वे मुझसे मिलना चाहते हैं।"

"क्यों? उनसे इला आपको क्यों मिलाना चाहती हैं?"

"यह मैं नहीं जानता।"

"मैं नहीं जानता कि आप मुझे अपना मित्र समझने लगे हैं या नहीं, पर मैं आपको इसी दृष्टि से देखता हूँ और इसी लिए मैं आपको सावधान किये देता हूँ कि आप इला महोदया को साधारण स्त्री न समझिए।"

"आपकी इस बात से तो मुझे यह सन्देह होता है कि आप इला के पूर्व जीवन के बारे में कुछ न कुछ जानते हैं।" चन्द्रसेन ने उत्सुकता के साथ पूछा।

"वह ठीक हो या न हो, किन्तु जो कुछ मैंने कहा है, उसका आप पूरा ध्यान रखिएगा।" कोगाको ने उत्तर दिया।

चन्द्रसेन—आप इस जहाज से कहाँ जायँगे, यह आप क्यों नहीं बतलाते?

कोगाको—बतला सकता तो जरूर बतला देता। पर सच तो यह है कि आपकी तरह मैं भी यह नहीं जानता कि मैं कहाँ जा रहा हूँ, और क्यों।

चन्द्रसेन—मेरी तरह कैसे ? मैंने तो यह कभी नहीं कहा कि मैं यह सब नहीं जानता।

कोगाको—कहने न कहने से क्या होता है ? असल में हैं तो आप दूसरे के हाथ में।

चन्द्रसेन—तो क्या तुम भी दूसरे के हाथ में हो ?

कोगाको—ऐसा ही समझिए। वह देखिए, आपकी इलादेवी आ रही हैं। अब मैं जाता हूँ।

कोगाको तेजी से वहाँ से चला गया।

चन्द्रसेन यह सोचकर हँसने लगे कि कोगाको इला को अँगरेज समझता है और इला उससे व्यर्थ डरती है।

५

कोगाको के मन में इस इटैलियन की कहानी ने जो उत्सुकता उत्पन्न कर दी थी, उसकी कुछ निवृत्ति का अवसर उसे फिर मिला। तब उस इटैलियन ने कहा—"गुप्त सरदार के साथ ट्रेन पर भी पन्द्रह व्यक्ति थे और जब वह मोण्टीकार्लो मे आकर रहा तब तो उनकी संख्या इसकी कई गुना हो गई। किन्तु बीस दिन व्यतीत हो जाने पर भी वह कुछ प्रबल प्रमाण इस बात का न पा सका कि वे काग़ज़ उस अँगरेज़ के पास ही मौजूद थे। एक दिन उसने अपने दल के एक आदमी को उसके पीछे लगा दिया। वह कई दिनों तक उस अँगरेज़ का पीछा करता रहा। अन्त में एक दिन उस अँगरेज़ ने उसे पकड़ कर ऐसा पटका कि वह बेहोश हो गया। यों उस अँगरेज़ को अधिकतर अपने टेनिस के खेल से ही मतलब था। उसी की बातें वह अपने मिलने-जुलनेवालों से किया करता था। उसका कहीं भी किसी राजनैतिक घटना से कुछ सम्बन्ध हो सकता है, यह समझ में आना बहुत कठिन था। किन्तु असल में अन्य अँगरेज़ों की भाँति वह भी स्वदेश-प्रेमी था। उसने उन काग़ज़ों में से कुछ की नक़ल अपने देश के उचित अधिकारियों के पास भेज दी थी। उसका विचार यह था कि वह सभी काग़ज़ों की पूरी प्रतिलिपि भेज दे, पर उसे मौक़ा न मिलता था। वह ट्रेनवाली सुन्दरी, जिसका नाम रोज़ी था, अब भी उससे बराबर मिलती रहती थी।

कोगाको—"ओह, रोज़ी ! कैसा अच्छा नाम है, पर यह उसका असली नाम नहीं हो सकता, वह तो इटैलियन थी न ?"

इटैलियन ने कहा--"यह तो मैंने कभी नहीं कहा। उसका पिता इटैलियन था, पर माता अमेरिकन थी। तभी तो वह ऐसी अद्भुत सुन्दरी हुई है! दो भिन्न-भिन्न वंशों के मिलन का प्राणि-विज्ञान के अनुसार ऐसा ही सुफल होता है।"

"प्राणि-विज्ञान का सिद्धान्त समझाने में न लगकर आप अपना क़िस्सा कहते जाइए।"

"वही तो कर रहा हूँ---उस बेहोश आदमी ने, जिसे अँगरेज़ ने मार गिराया था, होश में आने पर जो बयान दिया, उसे सुनकर इस अँगरेज़ के मन में इटली और इटली के गुप्त पुलिस कर्मचारी के प्रति उसकी असीम भक्ति देखकर प्रशंसात्मक भाव ने स्थान पाया। उसका बयान यह था---

मैं इटली देश का युवक हूँ। मेरा नाम माइकेल है। मिलान स्थान में मेरा जन्म हुआ था। मोण्टीकार्लो में नौकरी की तलाश में आया था। पर मैं कोई जगह नहीं पा सका। 'होटल डि पेरिस' में मैंने इस अँगरेज़ सज्जन को खज़ांची से कुछ लेते देखा। मैंने समझा कि वह रुपयों की थैली है। अपनी आर्थिक कठिनाई के कारण ही मैंने उसे लूटने के लिए उसका पीछा किया। इसके पहले कि मैं ऐसा अवसर पाऊँ, उसने मुझे देख लिया और पटक दिया। बस, यही मेरा बयान है।

कोगाको--खूब, बहुत अच्छा बयान दिया था!

इटैलियन--आप भी इसे अच्छा कहते हैं? तब हम लोगों में मतभेद नहीं हो सकता। पर हिन्दुस्तान के लोग राजनीति तक से इस आवश्यक असत्य और धोखेबाज़ी को निकाल देने का दम भरते हैं।

कोगाको--राजनीति और व्यापार ही नहीं, बल्कि आजकल का धर्म भी इनके विना चल ही नहीं सकता!

इटैलियन ने फिर कहा—इस युवक को ६ मास का जेल-दण्ड मिला और दण्ड भुगतने के बाद निर्वासन का हुक्म। इसी दिन अँगरेज़ से और रोज़ी से खुलकर बातचीत हुई। अँगरेज़ ने ताव में आकर कह दिया कि उसके पास वे काग़ज़ मौजूद हैं, और इटैलियन गुप्त-समिति एक माइकल नहीं, हज़ार माइकेल उसके पीछे लगा दे, तब भी अब वह काग़ज़ वह समिति पा नहीं सकती। कहने को तो वह अँगरेज़ यह कह गया किन्तु शीघ्र ही उसे होश आगया और उसने रोज़ी के प्रति अपना 'हार्दिक' प्रेम प्रकट करके यह इच्छा प्रकट की कि वह इस बात को किसी से न कहे। रोज़ी इस प्रेम-प्रकाशन के फन्दे में इस प्रकार फँस गई कि उसने उसी समय प्रतिज्ञा कर ली कि वह इसके प्रति ऐसा विश्वास-घात कदापि न करेगी।

कोगाको—मूर्खा! वह न जानती थी कि स्वदेश के प्रति विश्वास-घात ही सबसे बड़ी बुराई और सबसे बड़ा पाप है!

इटैलियन—इसके लिए आगे चलकर उसे उचित दंड मिला।

कोगाको—मिलना ही चाहिए था, किन्तु अभी मैं उसके बारे में नहीं जानना चाहता। मैं यह जानना चाहता हूँ कि इटली की गुप्त पुलिस का सरदार ऐसा अयोग्य क्यों था कि वह उन काग़ज़ों का पता इतने अधिक समय में भी न लगा सका?

इटैलियन का मुँह लाल हो गया। उसने कहा—जब जैसी बात आपकी ज़बान पर आ जाती है, बिना सोचे-समझे झट से उसे ही आप कह देते हैं। यह शिष्टता का ढंग तो है नहीं।

कोगाको—नाराज़ न होओ। असल बात क्या थी, यही जानने को मैं अधीर हो गया।

इटैलियन—उसे आप अब तक नहीं समझ पाये तो इससे आपके राजनैतिक ज्ञान की कमी का ही पता लगता है। उस अँगरेज़ का भी सम्बन्ध अपने देश की गुप्त पुलिस से था। वह वैसा बुद्धिहीन या राजनीति से दूर रहनेवाला और केवल टेनिस को ही सब कुछ समझने-वाला आदमी न था। सरदार किसी तरह से काग़ज़ों का पता न लगा सका पर उसने कुछ अंश तक इतना जान लिया था कि काग़ज़ देने के समय जो हिदायतें उसके देनेवाले ने दी थीं वे क्या क्या थीं—मैं कुछ अंश तक कहता हूँ, क्योंकि यद्यपि उसने समझा था कि उसे सब कुछ मालूम है, पर बाद में उसने जाना कि बात ऐसी नहीं थी। जो कुछ भी उसे मालूम हो सका था उसके अनुसार एक सुन्दरी लड़की को उसने उस अँगरेज़ के पास उस समय भेजा जब ऐसी ही एक सुन्दरी इटली के दूसरे दल की ओर से वहाँ आई थी। एक होटल में एक अच्छे अवसर पर वह मिली। पहले तो वह अँगरेज यही समझता रहा कि यही वह व्यक्ति है जिसे वह इटैलियन काग़ज़ों को देने के लिए कह गया था, पर जब खूब खाने-पीने और नाचने-कूदने के बाद उसने उससे अन्तिम गुप्त संकेत पूछा तो वह उसे ठीक न बता सकी। प्रतिमास के लिए दूसरे-दूसरे संकेत थे, यह उसे मालूम न था। उसने पहले मास का ही संकेत बतलाया जब कि अब दूसरा मास आरम्भ हो चुका था।—

कोगाको—यह तो अजीब चालाकी का ढंग था।

इटालियन—इस विभाग के लिए ये सब साधारण ढंग हैं, नहीं तो वे चल ही नहीं सकते। संसार में जहाँ भी किसी के प्रति व्यक्तिगत या सामूहिक अन्याय करना होता है, वहाँ दूसरी भाषा या ऐसे संकेतों के द्वारा ही अधिकाश काम होता है।

कोगाको—पर डाक्टर और बैंकर आदि जो पारिभाषिक शब्द बोलते हैं, उनसे भी तो कम ठगी नहीं होती।

इटैलियन—वह भी तो एक प्रकार से सामूहिक अन्याय कहा जा सकता है, और है। किन्तु ऐसे संकेतों का सदुपयोग भी हो सकता है और उनका किसी देश और जाति की विशेष सेवा के लिए काम में लाना आवश्यक हो सकता है, यह मैं मानता हूँ। मैज़िनी, लेनिन आदि सभी लोगों को अपने-अपने देश के उद्धार के लिए ऐसे उपायों का कुछ न कुछ अवलम्बन करना पड़ा था। जो हो, उस समय, उस अँगरेज़ ने साफ़-साफ़ जान लिया कि वह सुन्दरी किसी दूसरे दल की ओर से भेजी गई थी। वह उसे आदर और प्रेम के साथ अपने साथ लिवा ले गया। अपने यहाँ ले जाकर उसने उसे काग़ज़ों का एक पुलिन्दा दे दिया। उसे लेकर वह बड़ी प्रसन्नता से अपने डेरे पर लौटी। किन्तु दूसरे दिन वह सोकर नहीं उठी। दरवाज़ा खोलने पर वह मरी हुई पाई गई। उसके पास वह पुलिन्दा पड़ा था, किन्तु उसमें कोरे काग़ज़ों के सिवा कुछ न था। वह सुन्दरी जो असल में 'लाल कमीज़' की प्रतिनिधि थी, पहले ही से इटैलियन गुप्त पुलिस-द्वारा क़ैद कर ली गई थी।

कोगाको ने आश्चर्य का भाव प्रदर्शित करके कहा—उसे मारा किसने ? इटैलियन गुप्त पुलिस के सरदार के अनुयायियों ने या उसके विरोधी लाल कमीज़वाले दल के किसी व्यक्ति ने।

इटैलियन—यह सब दूसरे दिन बताऊँगा। इसके आगे की भी बहुत-सी बातें हैं। पर अदन में पहुँचने पर आप इला के साथ-साथ जाइएगा और ध्यान रखिएगा कि वह किसी को कुछ दे न सके।

कोगाको--यह भी कुछ देना-लेना चाहती है क्या ?

इटैलियन--बहुत कुछ। आप खूब सावधान रहिएगा और अगर आपके पास और कोई उपाय न हो तो गोली चलाने से भी न चूकिएगा। बाद में जो कुछ होगा, देखा जायेगा।

कोगाको--किसी जापानी से यह कहने की तो जरूरत ही नहीं है।

उसी दिन जहाज अदन पहुँचनेवाला था।

६

अदन पर जहाज़ पहुँचने के बाद अग्निबोट पर बैठकर राजकुमार चन्द्रसेन और उनके साथी तथा इला और कोगाको समुद्र-तट पर गये। वहाँ से मोटर में सवार होकर वे लोग अदन की बस्ती में गये। बस्ती अदन बन्दर से पाँच-छ: मील की दूरी पर है। पहाड़ी रास्ते और एक बड़ी घाटी में जाते हुए उन्हें विशेष आनन्द इसलिए भी आया कि सुन्दरी इला अदन का पूर्व इतिहास बड़े मनोरंजक ढंग से सुना रही थी। उस इतिहास में राज्य करनेवालों का ही नहीं, बल्कि अदन मे रहनेवाले सर्वसाधारण लोगों का हाल था। उसे सुनकर वीरता, साहस और स्वतंत्रता-प्राप्ति की अभिलाषा के भाव सुननेवालों में अपने आप उठना सर्वथा स्वाभाविक था।

यद्यपि अदन के रहनेवाले साधारण स्थिति के, बल्कि ग़रीब होते हैं मगर वे अँगरेज़ी ढंग से कुर्सी और मेज पर बैठकर काफ़ी और चाय पी रहे थे। बाज़ार में पूरी चहल-पहल थी। तारकोल की बनी हुई बहुत अच्छी सड़कें देखकर चन्द्रसेन प्रसन्न हुए। इला के इच्छानुसार वे सब एक विशेष होटल में गये। वहाँ उन्हें मालूम हुआ कि दो स्त्रियाँ और एक पुरुष बहुत देर से उनकी प्रतीक्षा में हैं। मर्द का पहनावा हिन्दुस्तानी की तरह का ही था, लेकिन दोनों औरतें वहाँ की अन्य स्त्रियों की भाँति काले बुरके और मिस्र के तरीक़े के कपड़े पहने थीं।

इला ने चन्द्रसेन और उस पुरुष का परिचय कराकर कहा

आप लोग जो बातें करना चाहते हैं, कर लें; तब तक हम लोग दूसरे कमरे में हैं।

यह कहकर वह अन्य सबके साथ दूसरे कमरे में चली गई।

क़रीब आधे घंटे में एक पिस्तौल की-सी आवाज़ आई। इला ने देखा कि कोगाको उस कमरे में नहीं है। इला उन दो स्त्रियों से बातचीत कर रही थी, इसी बीच में कोगाको वहाँ से चला आया था और चुपचाप कमरे के बाहर खड़ा होकर चन्द्रसेन तथा दूसरे पुरुष की बातचीत सुनने लगा था। अन्त में जब उसने देखा कि उस आदमी और चन्द्रसेन में वाक्-युद्ध का स्थान मल्लयुद्ध ने ले लिया तब आगे बढ़कर उसने एक गोली चला दी। तुरन्त ही वह आदमी फ़र्श पर गिर पड़ा। चन्द्रसेन ने कोगाको की ओर कृतज्ञता-भरे नेत्रों से देखकर कहा—आपको हार्दिक धन्यवाद! मैं बहुत कृतज्ञ हूँ।

कोगाको गम्भीरता से बोला—धन्यवाद पीछे दीजिएगा, पहले अपनी जान बचाइए—जल्दी ही यहाँ से भागकर जहाज़ पर चलिए। मैं तो पहले से ही जानता था कि इला साधारण स्त्री नहीं है। जल्दी चलिए।

उसी समय इला वहाँ आई। उसने कोगाको से कहा—तुम मेरे बारे में क्या कह रहे थे? मैं राजकुमार को यह विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि जो कुछ भी इन्होंने कहा है, वह सब बिलकुल झूठ है। मुझे तनिक भी यह आशंका न थी कि आपमें और इनमें कोई झगड़ा उठ खड़ा होगा। चलिए, मैं आपके साथ इसी समय चल रही हूँ। जो औरतें यहाँ हैं वे भी मेरे साथ चलेंगी। इस आदमी को यहीं बेहोश पड़ा रहने दीजिए, शायद इसके गोली ऐसी जगह नहीं लगी कि यह मर सके।

चन्द्रसेन ने इला को जैसे एक नये ही रूप में देखा। किन्तु बिना एक शब्द भी बोले वे वहाँ से दूसरे कमरे में चले आये और फिर सब लोगों को साथ लेकर मोटरों में बैठ अपने जहाज के लिए लौट पड़े। वे दोनों स्त्रियाँ उस बेहोश आदमी को देख आई थीं और फिर इनके साथ हो गई थीं।

७

लाल समुद्र बहुत शान्त है। अदन से ही इसका प्रारम्भ होता है। समुद्र की शान्ति से चन्द्रसेन के दिल और दिमाग़ की मतली तो दूर हो गई किन्तु उनके मन में जिस नई अशान्ति ने स्थान पा लिया था वह और बढ़ रही थी।

जहाज़ स्वेज़-नहर होता हुआ पोर्ट सईद बन्दरगाह पर रुका। वहाँ से मिस्र के स्तूपों—पिरेमिड्स—को देखने के लिए कितने ही लोग चल खड़े हुए। इनमें राजकुमार का पूरा दल भी था।

आज राजकुमार के दल के दो लोगों में हिन्दी-हिन्दोस्तानी पर बहस छिड़ी हुई थी। एक का कहना था कि इस देश का नाम हिन्द है, यहाँ के रहनेवाले, चाहे वे जिस धर्म के हों, हिन्दी हैं, जैसे सिन्ध के रहनेवाले सिन्धी और पंजाब के पंजाबी कहलाते हैं, और यहाँ की भाषा का नाम भी हिन्दी ही हो सकता है। दूसरा कहता था कि नहीं, यहाँ के रहनेवाले हिन्दू हैं, पर अब यह शब्द संकीर्ण अर्थवाला बना दिया गया है। हिन्दू सब लोग तभी हो सकते हैं जब वे विशेष हिन्दुत्व के अनुसार चलें—ऐसा कहनेवाले लोग यहाँ पैदा होनेवाले और सदियों से इसी को मातृभूमि समझनेवाले कितने ही करोड़ लोगों को हिन्दू कहने को तैयार नहीं। इसी लिए अब यहाँ के सब लोगों को हिन्दू की जगह हिन्दोस्तानी कहना ज्यादा ठीक है और सबकी ज़ुबान को भी हिन्दुस्तानी ही कहा जा सकता है, और कुछ नहीं।

पहले महाशय 'हिन्दू' की यह परिभाषा मानने को ही तैयार न थे।

कोगाको ने इस विवाद के बारे में जानकर इसे बहुत ही मूर्खतापूर्ण और 'सच्ची राष्ट्रीयता की दुखद कमी का परिचायक कहा। वह बोला--हिन्दी और हिन्दोस्तानी नामों को लेकर झगड़ा करने की अपेक्षा इन दोनों के लिए यह कहीं अच्छा हो कि ये लोग मिल-जुलकर अपने देश के लिए सुई, दियासलाई, क़लम, कपड़ा, काग़ज़ आदि बनाने के लिए प्रयत्नशील हों। तभी इन सबमें अपने देश के साथ सम्पूर्ण आर्थिक स्वार्थ हो सकता है और परस्पर सद्भाव। आप लोगों को क्या वास्तविक स्वाभिमान के मूल सिद्धान्तों का भी पता नहीं है? पहले कोई देश जिन्दगी की आवश्यक चीज़ों में स्वावलम्बी बनता है, तब वह ऐसे विवादों में अपने मनोरंजन का समय व्यतीत किया करता है। आवश्यक चीज़ों के लिए परमुखापेक्षी देश की ऐसी बातें सभ्य संसार में हँसी ही पैदा किया करती हैं। एकराष्ट्र बनाने के स्थान पर ये लोग जो कुछ बना-बनाया है, उसे भी बिगाड़ने में लगे हैं। अपनी-अपनी ओर अनुचित ज़िद होने से सुलह की जगह दुश्मनी को और प्रेम का स्थान नफ़रत को मिल जाता है। क्या ये लोग इतनी मोटी बात भी अपनी सूक्ष्म बुद्धि से समझ नहीं पाते? और क्या, उन्हें यह भी पता नहीं कि हिन्दुस्तान भर की भाषा का किन-किन देशों में इस समय केवल 'क़ुली भाषा' नाम है?

कोगाको की इन बातों का उन दोनों आदमियों में से किसी पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अपने विवाद या वितंडावाद में बराबर लगे रहे। किन्तु चन्द्रसेन यह 'क़ुली' नाम सुनकर एक लम्बी साँस खींचे बिना न रह सके।

कोगाको ने पहले ही से राजकुमार से यह कह दिया था कि अदन में जहाज़ से इस तरह उतरकर उन्होंने भूल की थी और अब उन्हें चाहिए

कि वे अपने दल के लोगों को ही नहीं बल्कि स्वयं उसे भी अपने साथ अवश्य रक्खें। अतः वह बराबर उनके संग था। जो दो स्त्रियां अदन से इस जहाज़ पर सवार हुई थीं वे घूमने नहीं गईं। कोगाको ने उनकी ओर से भी चन्द्रसेन को विशेष सावधान कर दिया था और इस समय उनके जहाज़ पर ही रह जाने से उसे प्रसन्नता ही हुई थी।

रास्ते में उस रेगिस्तान में पहुँचने पर, जहाँ मृगतृष्णा के दृश्य दिखाई देते हैं, कोगाको ने राजकुमार से कहा—देखिए, यहाँ आगे पानी भरा जान पड़ता है पर वहाँ पहुँचने पर वह रेगिस्तान में ही बदल जाता है। आपकी इला भी इसी प्रकार की है। इससे आप अपनी प्रेम-तृष्णा की तृप्ति कभी नहीं कर सकते।

इला इतना पीछे थी कि वह इस बात को सुन नहीं सकती थी। अगर सुन सकती तो यह कहना कठिन है कि वह राजकुमार को फिर उसी प्रकार का विश्वास दिलाती या नहीं जैसा वह इसके पहले दिला चुकी थी।

राजकुमार मिस्र की उस प्राचीन सभ्यता के बारे में सोच रहे थे जब--आज से कम से कम ६ हज़ार वर्ष पहले और ईसा के पैदा होने के कम से कम चार हज़ार वर्ष पहले—संसार भर को अपनी अद्भुत रचना से आश्चर्य में डालनेवाले इस रेगिस्तान में इतने बड़े-बड़े पत्थरों को न जाने कैसे लाकर ये स्तूप बनाये गये थे।

प्रेम-तृष्णा की तृप्ति न होने की बात सुनकर उन्होंने उदासीन-भाव से कहा—मनुष्य की कौन-सी तृष्णा इस संसार में इस प्रकार पूर्ण हो सकी है कि फिर उस वस्तु की इच्छा न रह जाय? संसार की जो सात आश्चर्यजनक वस्तुएँ मानी जाती हैं और जिनमे मिस्र के स्तूप भी एक

है, वे सब अतृप्ति की मौन कहानी ही तो हैं। इसके सिवा एक महायुद्ध से तीन दशाब्दी के पूरे होने के पहले ही जिस संसार ने दूसरे महायुद्ध की पूरी तैयारी प्रारम्भ कर दी उसमें कौन-सी तृप्ति है? मिस्टर कोगाको, अगर तुमने जो बातें कही हैं उनमें आधी भी ठीक हों तो मुझे सच्ची तृप्ति की आशा तो सदैव के लिए ही छोड़ देनी चाहिए।

कोगाको—मैं निराशावादी नहीं हो सकता। सच्ची तृप्ति के लिए आपसे तो यही मेरा कहना है कि आप लोगों को हिन्दुस्तान के सब आपसी झगड़ों का निपटारा करने के प्रयत्न में लग जाना चाहिए। इसके लिए अपनी दृष्टि आपको सम्पूर्ण एशिया और फिर पूर्व भर पर डालनी चाहिए। यही एक अमोघ उपाय है।

उसने मन ही मन सोचा—जो कुछ कहना है, उसे अब कहना ही चाहिए!

चन्द्रसेन—यह कोई ऐसी बात नहीं है जो व्यक्तिगत रूप से मेरे लिए ही लागू हो। अगर—

कोगाको ने बात काटकर कहा—अगर-मगर नहीं, क्या आप इससे सहमत नहीं हैं?

चन्द्रसेन—"श्वेतवाराहकल्पे, जम्बूद्वीपे, भरतखण्डे" इस देश के दैनिक व्यवहार के संकल्प में अब भी मौजूद है। खेद यही है कि उसका प्रभाव बहुत कम हो गया है—बल्कि सामाजिक रूप से कुछ भी नहीं रह गया है। इसका कारण इस समय की वे भयानक अवस्थायें हैं जिनमें सच्चे देशभक्त तथा बुद्धिमान् प्रचारकों की कमी और नीच स्वार्थियों तथा विरोधी प्रचारकों की अधिकता हो गई है। केवल अपने मुल्क का ही नहीं बल्कि कुल द्वीप का और कुल खण्ड का भाव हममें उस समय

भी था जब हम इस संसार के आजकल के सबसे सभ्य कहलानेवाले देशों में से अधिकांश जंगली अवस्था में पड़े थे। मिस्र, जापान, चीन, यूनान, रोम, ईरान आदि-आदि देशों से तो हमारा सदैव घनिष्ठ सम्बन्ध था।

कोगाको—बहुत समय पहले आपके देश ने चीन और जापान को उदार बौद्ध-धर्म में दीक्षित करके उनका उपकार किया था, पर जिस समय आपके देश से वही धर्म निकाल बाहर किया गया, उसी समय यह स्पष्ट हो गया कि बाहर से बड़े-बड़े धक्के खाना आपके देश के भाग्य में है। आपको अपने धर्म की संकीर्णता और एक दलविशेष के हानिकारक आधिपत्य को हटाने का पूरा अवसर फिर भी मिला—पर उसका भी यथेष्ट सदुपयोग आप लोग न कर सके। 'जम्बू' द्वीप का भाव जब आप लोगों में था, तब से इस एशिया को बने थोड़ा समय नहीं हुआ।

चन्द्रसेन को आशा न थी कि हिन्दुस्तान की बातों का इस जापानी को ऐसा ज्ञान होगा, इसी लिए बहुत आश्चर्य में आकर उसने कहा—दूसरा अवसर हमें कब मिला था?

कोगाको ने गम्भीरतापूर्वक और ऐसे स्वर में, जिससे उसके अन्तःस्तल की वेदना प्रकट हो रही थी कहा—जब कबीर, नानक आदि-आदि ने धर्म की ऊपरी बातों या अन्य बाह्य आडम्बरों को हटाकर उसकी वास्तविकता आप लोगों को—आपके देश के हिन्दू-मुसलमान दोनों को—बतलानी चाही। तरह-तरह के पूजा-पाठ, अनेक जातियों की अस्वाभाविक भिन्नता, ढोंगी छुआछूत आदि का धर्म के असली लक्षणों से कितना और कैसा विरोध है, यह उन्होंने फिर बतलाया। पहले भी धर्म में शम, दम, सत्य आदि मानसिक और आत्मिक शुद्धि के साधन समझे जाते थे। धर्म के दस लक्षण ही आपके और हमारे धार्मिक ग्रंथों में कहे गये थे।

आजकल की मनमानी कुरीतियों और इस समय के सामाजिक अत्याचारों की उनसे संगति कैसे हो सकती है ? हमें आशा यही है कि इतने अधिक धक्के खा लेने पर अब आपका देश शेष संसार के वैज्ञानिक ढंगों को अपनाकर कुल संसार को सचमुच न्याययुक्त पथ पर चलते देखना चाहेगा।

चन्द्रसेन—प्रश्न तो यही है कि यह कैसे होगा ?

कोगाको—आपके इस प्रश्न का उत्तर जापान कई बार दे चुका है। उसे दुहराने के पहले मैं आपसे यह कहना चाहता हूँ कि आपको पहले इटली ही जाना चाहिए। वहाँ आपको अनेक व्यक्तिगत और समाजगत रहस्यों का पता चल जावेगा—शायद इला के रहस्य तक का। रहा सच्चा पथ, सो वह तब तक सम्भव नहीं, जब तक कुल एशिया—बल्कि कुल पूर्वीय संसार—एक परिवार के रूप में न हो जाय, और जापान को अपना गृह-पिता न मान ले।

चन्द्रसेन ने दृढ़ स्वर में कहा—यही बात मानने को मैं तैयार नहीं हूँ। इस तरह पिता बनने की इच्छा, अन्याय करने की इच्छा का ही एक रूप है, यह बारबार देखा जा चुका है। हम सब समान शक्तिवाले भाई बनने को तैयार हो सकते हैं। किसी देश को सबका पिता हम कभी नहीं मान सकते। किसी देश का इस तरह पिता बनने का प्रयत्न उससे भी बढ़कर लूट-मार और ढोंग का ढंग होगा, जो किसी देश में उसी देश के एक समाजविशेष या दलविशेष का हो सकता है।

कोगाको ने व्यंग की कठोर हँसी के साथ कहा—जान पड़ता है कि आप लोग, या विशेषत: आप, क्योंकि इस समय आपसे ही बातचीत हो रही है—जग नहीं रहे हैं, बल्कि घोर निद्रा में सो रहे हैं और मनमाने सुहावने स्वप्न देख रहे हैं। क्या आप नहीं जानते कि इस समय के संसार

के कितने भागों पर इसी तरह का राज्य जारी है ? या आप जान-बूझकर अनजान बन रहे हैं ? आप लोग किसी प्राचीन काल के 'श्वेतवाराह-कल्पे' आदि संकल्पों का स्मरण करके ही यथेष्ट गौरव प्राप्त कर लेते हैं। जापानियों का आपको 'स्वप्नद्रष्टा' कहना बिलकुल ठीक है।

चन्द्रसेन ने कहा—उन्हें शीघ्र ही मालूम हो जावेगा कि अब हमारे लिए ऐसा किसी तरह नहीं कहा जा सकता।

इसके उत्तर में कोगाको जो हँसी हँसा, उसकी चोट कठिन शूल से भी बढ़ी-चढ़ी थी, इसे चन्द्रसेन ने भी अनुभव किया। दोनों कुछ देर चुप रहे।

राजकुमार ने सोचा—कोगाको धृष्ट और मुँहफट युवक है। उस दिन इला ने सब ठीक कहा था। इसे अपने देश की स्वाधीनता और उसकी युद्ध-शक्ति का अपार घमंड है। चीन जैसे विशाल देश पर, जिसकी जन-संख्या एशिया में सबसे अधिक है, विना यथेष्ट कारण के जापानियों ने हमला किया और राष्ट्र-संघ की निर्बलता के कारण उस पर विजय पाते गये। किन्तु क्या इसे उचित कहा जा सकता है ? कोगाको का यह स्पष्ट कथन है कि जापान एशिया का पिता बनकर रह सकता है, उसके सब देशों—चीन, हिन्दुस्तान आदि के साथ भाई बनकर वह नहीं रहना चाहता और यह जापान हमारे देश या चीन का सातवाँ-आठवाँ हिस्सा भी नहीं है। तब क्या युद्ध-शक्ति ही संसार में सब कुछ है ? और क्या इस कोगाको का भी उसी शक्ति के संचालकों से कोई विशेष सम्बन्ध है ?

कोगाको ने आत्म-संतोष के भाव के साथ सोचा—मेरा यह पहला पाठ व्यर्थ नहीं हुआ। राजकुमार सोच-विचार में पड़ गया है। अगर

यह इस इला के सर्वथा हानिकारक और लज्जाजनक प्रेम-रोग से छुटकारा पा जावे तो सम्भव है, यह आदमी बन जावे। अभी यह बिलकुल मृत तो नहीं जान पड़ता।

इला को आती देखकर उसने कहा—देखिए, आपने स्वयं ही कहा है कि पहले भरतखंड के ही नहीं, कुल द्वीप के और पृथ्वीखंड के प्रति भी व्यावहारिक ध्यान आप लोगों का था। वही आपके गौरव का काल था। समुद्र-यात्रा-निषेध, जाति-पाँति-बन्धन आदि से आप लोग यंत्रवत् निर्जीव हो गये। अब आपमें फिर वैसा ही भाव आजावे, इतना ही मैं चाहता हूँ, और कुछ नहीं।

८

जहाज़ पर चाय तथा खाने आदि का प्रबन्ध करने के लिए जो सुन्दरियाँ रहती हैं उन्हें 'स्टिवारडेस' कहते हैं। राजकुमार ने धीरे-धीरे देखा कि इस जहाज़ में जो अँगरेज़ युवतियाँ इस काम पर हैं उनमें से सभी संसार को उस रूप में देखने को व्याकुल हैं जब पीड़ित, बुभुक्षित, अपमानित तथा पद-दलित लोगों के लिए भी अपनी सब तरह की उन्नतियों के लिए यथेष्ट पथ खुले होंगे। किन्तु अब इला राजकुमार से बराबर यही तर्क करती थी कि ऐसा समय कभी नहीं आ सकता, क्योंकि ऐसा करने से कोई समाज-संगठन और कार्यों का सुचारु संचालन सम्भव ही न होगा। यदि राजकुमार कहते थे कि ऐसा तर्क फ़ासिस्टी मनोवृत्ति का सूचक है तो वह हँसकर उत्तर देती थी—ईश्वर ने हमें ऐसा ही बनाया है, क्योंकि हमें दूसरों पर शासन करना है। जिनके भाग्य में दूसरों पर शासन करना नहीं होता, वे ही ऐसी मनोवृत्ति से भयभीत होते हैं और लोकतंत्र की दुहाई दिया करते हैं। दूसरों पर शासन करने ही में मानव की पूर्ण तृप्ति होती है, इसलिए अपनी इस स्वाभाविक प्रवृत्ति पर वह कभी विजय नहीं पा सकता।

राजकुमार हँसकर कहता था—तुम मुझ पर शासन करना चाहती हो, या अन्य लोगों पर भी?

इला—लाखों और करोड़ों पर।

राजकुमार—वह कैसे सम्भव हो सकता है?

इला—वही तो सम्भव होगा।

राजकुमार--पर मैं तो किसी पर शासन नहीं करना चाहता, तुम पर भी नहीं।

इला--सभी नियमों में अपवाद होते हैं। आप अपवादरूप ही हैं। तभी तो मैं आपको ही चाहती हूँ।

राजकुमार--पर तुम तो जहाज पर कभी किसी के साथ नाचने तक नहीं जातीं?

इला--वह सब मुझे अच्छा नहीं लगता।

राजकुमार--कोगाको तो खूब नाचना जानते हैं।

इला--वे जिस सुन्दरी के प्रेम में फँस रहे हैं वह उन्हें धोखा दिये बिना न रहेगी।

राजकुमार--ऐसा क्यों कहती हो?

इला--आप स्वयं देख लीजिएगा।

राजकुमार--अब तो तुम उनसे नहीं डरतीं?

इला--डरना! मैं उनसे या किसी से कभी नहीं डरती। मैं उनके ढंगों से नफ़रत करती हूँ और उन्हें उचित उपेक्षा के भाव से देखती हूँ।

राजकुमार--कोगाको और उस इटैलियन में तो बड़ी गहरी घुटती है। जान पड़ता है, दोनों को शराब का एक-सा शौक़ है।

इला--क्यों न होगा? वह तो जब स्तूप देखने के लिए ऊँट पर सवार होकर चलने लगा, तब भी दो घूँट पिये बिना नहीं रह सका।

राजकुमार--रेल में तो बिलकुल मेरे पास था, और ऊँट की सवारी में भी मेरे पास आगया था। पर जब वह उस पर चढ़ा तब मैं वहाँ न था।

इला ने हँसकर कहा--क्यों, होते तो क्या उसे शराब पीने से रोक देते?

राजकुमार—ज़रूर । वह जब मुझे बहुत-से उपदेश दिया करता है, तब मैं ही क्यों चूकता ?

इस पर दोनों हँसने लगे।

उसी दिन उन्होंने कोगाको से इस बारे में बातचीत की।

'अन्त में मेरी ही बात सच हो गई न ? और अभी दो ही बन्दरगाह पीछे छूटे हैं।'—हँसते हुए कोगाको से कहा।

कोगाको ने सोचा—मेरी ओर इटैलियन सुन्दरी, मिस रोमा का आकर्षण इस प्रकार हो रहा है कि वह चन्द्रसेन से छिपा न रह सका; अच्छा ही हुआ। अतः उसने राजकुमार की बात पर कोई संकोच या लज्जा का भाव न दिखलाकर स्वाभाविक स्वर में उत्तर दिया—इटली की राजधानी रोम में मैं आपको सबसे पहले ले चलना चाहता हूँ। क्या रोम को देखने के लिए मिस रोमा का साथ पहले से ही कर लेना अच्छा नहीं है ?

राजकुमार—तो आप लोग जो कुछ भी कर रहे हैं, वह सब मेरी ही भलाई की शुभेच्छा से प्रेरित होकर किया जा रहा है ?

कोगाको—'आप लोग' कहकर मेरे साथ आप किस-किसको शामिल कर रहे हैं और उनकी क्या इच्छा है, यह तो मैं नहीं कह सकता, किन्तु मैंने अपने इस काम का रहस्य आपको ठीक-ठीक बतला दिया।

राजकुमार—इला की इच्छा थी कि माल्टा बन्दरगाह पर भी उतरा जावे। वहाँ एक कमरे में लगे हुए पुराने चित्रों को कितने ही लोग देखने जाते हैं, क्योंकि वे अब भी बिलकुल नये बने हुए जान पड़ते हैं। इला का कहना है कि इसी कारण यह कमरा संसार भर में प्रसिद्ध है। हमारे देश के कितने ही शास्त्री लोग तो अब भी

समुद्रयात्रा आदि का निषेध करते हैं और धर्म-बन्धन मानकर कूप-मंडूक बने रहने की व्यवस्था देते हैं। उसी तरह अपने को संसार भर से पवित्रतर और श्रेष्ठतर समझने के अभिमान-सरोवर में डूबे रहने में वे मस्त हैं। साधारण जनता ऐसी लूटी-खसोटी गई है और अब भी उनके नियमों तथा सिद्धान्तों या क़ायदे-क़ानूनों के नाम से इस तरह चूसी जाती है कि वह अपने ही देश में यात्रा करके लाभ उठाने में असमर्थ हो गई है। बड़े-बड़े व्यापारी या राजा-महाराजा विदेशों की यात्रायें करते हैं, पर उन्हें ऐसे कमरों के देखने का अवकाश ही न मिलता होगा। मेरे चार साथियों में से केवल एक उसे देखना चाहता है। वह जाति-पाँति का मोह छोड़कर मेरे साथ भाग आया है।

कोगाको--अगर आपकी इच्छा उसे देखने की थी तो आप चले क्यों नहीं? आप सदैव दूसरों से ही प्रभावित रहते हैं, स्वयं कुछ नहीं कर सकते। यह क्या एक राजकुमार को शोभा देता है!

चन्द्रसेन ने इस प्रश्न का कुछ भी उत्तर न देकर कहा--इला की यह इच्छा है कि पहले इटली न चलकर स्विट्ज़रलेंड चला जावे। वह योरप का सबसे सुन्दर देश है और लोकतन्त्र का सबसे अधिक अनुयायी भी।

कोगाको ने और भी चिढ़कर कहा—वही तो—फिर इला की इच्छा! स्विट्ज़रलेंड की आबादी ही कितनी है? वह तो आपके देश की कई एक कमिश्नरियों से भी छोटा है। इतने पर भी वहाँ तीन-तीन भाषायें बोली जाती हैं—फ्रेंच, जर्मन और इटेलियन। यह तो आपके देश को संसार भर में बदनाम किया गया है कि हिन्दुस्तान में बेशुमार भाषायें, असंख्य धर्म और अगणित जातियाँ हैं, जिससे हिन्दुस्तानी लोग आपस में कभी मिल नहीं सकते।

किन्तु सच पूछा जाय तो ऐसे तर्क से समस्त योरप पर जापानियों का क़ब्ज़ा हो जाना चाहिए, क्योंकि वहाँ भाषाओं, धर्मों और जातियों का मतभेद आपके देश से कम नहीं है बल्कि अधिक ही है, जैसा कि आप छोटे-से स्विट्ज़रलैंड में देख सकते हैं। आप पहले इटली ही चलिए। इटली ने योरप के कितने ही भाग पर, जिसमें आधुनिक फ़्रांस, स्पेन आदि हैं, और इँगलैंड पर भी कई सौ साल तक राज्य किया था। उस देश को अपने पूर्व इतिहास का घमंड क्यों न हो ?

चन्द्रसेन--यह घमंड व्यर्थ है। सभी देश सैनिक विजय और पराजय का इतिहास रखते हैं। पर इस इतिहास को संगठित लुटेरों का ही इतिहास कहना चाहिए। इटली अगर कभी जीता था तो वह कभी हारा भी और पराधीन भी हुआ। आस्ट्रिया की ग़ुलामी से छुटकारा पाये हुए उसे अभी मुश्किल से सौ साल हुए हैं !

कोगाको--आप लोगों का दर्शनशास्त्र विचित्र है। पराधीनता की अवस्था में उसने महात्मा मैज़िनी को उत्पन्न किया। उन्होंने 'मनुष्य के कर्त्तव्य' की ओर ध्यान दिलाकर अपने देश को स्वाधीनता प्राप्त करने में समर्थ बनाया। उनका भी उसे अभिमान न होना चाहिए क्या? आप उनका और वीरवर गैरीबाल्डी की समाधियों का दर्शन नहीं करना चाहते? आपका देश न जाने किस काल के प्रह्लाद और रामचन्द्र की स्मृतियाँ मनाता जा रहा है। ऐसे नये वीर आपके यहाँ कहाँ हुए ? सभ्य द्रविड़ों के ऊपर राम की विजय को भी संगठित धूर्तता का फल मानते हैं आप ?

चन्द्रसेन--मुझे तो मैज़िनी की सबसे अधिक मान्य यह बात जान पड़ी कि 'कार्ल मार्क्स का सन्देश संसार के सब लोगों के लिए प्रेम का न था।' वे 'नफ़रत के नबी' कहे जा सकते हैं और कुछ नहीं। आपका

राम-सम्बन्धी प्रश्न भी ऐसा ही है। हम तो रावण को भी आर्य और ब्राह्मण मानने लगे।

कोगाको—खूब हुआ! पर आज की ये सब बातें आपके दिमाग़ की उपज नहीं जान पड़तीं। शायद मैंजिनी के बारे में आपसे इला ने ऐसा कहा हो? है न यही बात?

चन्द्रसेन—इला ने यदि कहा भी हो तो क्या बुराई? आप उनसे ईर्ष्या क्यों रखते हैं?

कोगाको—ईर्ष्या? इला से ईर्ष्या? आप कहते क्या हैं? ईर्ष्या क्या उससे की जाती है जिसे कोई नितान्त अपदार्थ या हास्यप्रद समझता हो?

चन्द्रसेन—क्या इला आपकी दृष्टि में ऐसी ही हैं?

कोगाको—हाँ, और इटली में चलकर आप भी उसका असली स्वरूप देख लेंगे।

चन्द्रसेन—अच्छी बात है, मैं पहले इटली ही चलूँगा। देखूँ तो उनका वह कैसा भयानक रूप है जिससे आप मुझे वैसा ही डराना चाहते हैं, जैसे कोई किसी बच्चे को 'जूजू' से डरावे। मुझे तो विश्वास है कि वहाँ चलने पर आपका ही भारी भ्रम दूर हो जावेगा।

कोगाको—ऐसा हो सके तो मुझे कोई आपत्ति नहीं हो सकती, बल्कि हार्दिक प्रसन्नता होगी।

चन्द्रसेन—क्यों?

कोगाको—क्योंकि तब मैं आपको उसका वैसा ही सच्चा प्रेमी देखना चाहूँगा, जैसा मैं रोमा का हो गया हूँ।

चन्द्रसेन--और यदि रोमा के बारे में ही रोम में कोई सन्देहात्मक बात मालूम हो जावे ?

कोगाको—हम लोगों के लिए वैसी कोई बात सन्देहात्मक नहीं होती । हम वर्तमान को लेकर चलते हैं, आप लोगों की तरह भूत-काल को लेकर नहीं ।

चन्द्रसेन—क्या रोमा के पहले चाहे जितने प्रेमी रह चुके हों और उनमें से जिनसे उसका जैसा भी सम्बन्ध रह चुका हो, आपको उस सबसे कुछ भी मतलब नहीं है ?

कोगाको ने हँसकर कहा—नहीं, कुछ भी नहीं। है न यह बात आप लोगों की अन्धरूढ़ियों के बिलकुल विपरीत ? आप तो ऐसा विचार भी सहन न कर सकते होंगे !

चन्द्रसेन--नहीं, यह सब तुम्हारा ग़लत विचार है। कम से कम मेरी श्रेणी के लोगों का तो ऐसी किसी अन्धरूढ़ि से कभी सम्बन्ध नहीं रहा है ।

कोगाको--यह तो वही इटली की फ़ासिस्टी ढंग की बात है। मैं जानता हूँ कि राजे-महाराजे अपनी विलासिता के लिए ऐसी बातों का विचार करने लगें तो फिर उन्हें भी साधु ही बनना पड़े। पर अन्य अनेक देशों के सभी लोगों की वैसी ही मनोवृत्ति आप क्यों नहीं मानते और उसकी प्रशंसा क्यों नहीं कर सकते ?

अब चन्द्रसेन हँसे । बोले--मानव-स्वभाव की ही ऐसी जटिलता है। मैं अनेक लोगों से प्रेम करना चाहता हूँ और जब दूसरों को बहुत-से व्यक्तियों को अपनी ओर आकर्षित करते देखता हूँ, तब उनसे मुझे स्वाभाविक ईर्ष्या होती है। मैं इला को चाहता हूँ, किन्तु यदि मुझे पता

लग जावे कि कोई अन्य व्यक्ति भी उसको इसी तरह चाहता है तो मैं इसे कैसे सहन कर सकता हूँ?

कोगाको---आपके यहाँ जब कोई पुरुष दो विवाह कर लेता है या दो स्त्रियों से सम्बन्ध रखता है, तो वे स्त्रियाँ उसे कैसे सहन करती हैं? तिब्बत आदि कई स्थानों में तो एक स्त्री के कई पति हुए बिना गृहस्थी ठीक तरह से चलती ही नहीं है। असल में इन विचारों का सम्बन्ध किसी धर्म या ईश्वरी आदेश से नहीं, बल्कि केवल सामाजिक संस्कारों से है।

चन्द्रसेन---यह तो मैं भी मानता हूँ। अच्छा, मैं पूछता हूँ कि क्या आप इला के बारे में सचमुच कुछ जानते हैं?

कोगाको---उसके पहले के प्रेमियों के बारे में? नहीं, मैं यह कुछ नहीं जानता और न मैं यह पता ही लगाना चाहता हूँ।

चन्द्रसेन---मेरी बात सुने बिना मनमाना समझकर उत्तर देना तो ठीक ढंग नहीं है। मैं उसके प्रेमी-पुजारी आदि के बारे में नहीं, बल्कि उसके राजनैतिक जीवन के बारे में पूछ रहा हूँ। उस दिन आपने मेरी जिस तरह रक्षा की थी, उसी से मेरे मन में यह सन्देह दृढ़ होता जा रहा है।

कोगाको---उसकी दवा तो मैं आपको बतला चुका हूँ---आप इटली चलिए। क्या कभी आपने यह सोचा है कि संसार में हिन्दुस्तान सबको विशेष आकर्षक क्यों जान पड़ता है?

चन्द्रसेन---इला के बारे में आप और कुछ भी नहीं बतलाना चाहते?

कोगाको---बतला सकता तो मुझे प्रसन्नता ही होती। अपने देश का रहस्य जानिए तो संसार के ऐसे सभी लोगों का रहस्य आपको मालूम हो जावे। अरबों का माल और अरबों का ऋण---

चन्द्रसेन—क्या तुम्हारा इटैलियन साथी इला के बारे में कुछ जानता है ?

कोगाको—सम्भव है, पर मैं उससे इस सम्बन्ध की बातचीत करना ठीक नहीं समझता। जानते हैं, आप, जापान के बड़े से बड़े पदाधिकारी पांच सौ रुपये महीने पाते हैं ?

चन्द्रसेन—यह इटैलियन स्वयं कुछ नहीं कहता ? पहले इसका सच्चा उत्तर दो—फिर तुम्हारी अन्य सब बातें ध्यान से सुनूंगा।

कोगाको—एक दिन उसने इतना ही कहा था कि इसकी बहन का इटली के सर्वेसर्वा से घनिष्ठ सम्बन्ध है।

चन्द्रसेन—यह तो मेरे लिए बहुत हर्षदायक बात है !

सचमुच आनन्द से उसका मुख उज्ज्वल हो गया।

६

यह सुनकर कि राजकुमार स्विट्ज़रलैंड न जाकर पहले इटली ही जाना चाहते हैं, इला को बहुत बुरा मालूम हुआ। अन्त में उसने यही निश्चय किया कि उनसे कुछ बातें आमने-सामने साफ़-साफ़ हो जावें और इस निश्चय को कार्य्य-रूप देने के लिए वह उनके पास शाम को पाँच बजे के क़रीब आई। किन्तु उसके सब तर्कों को सुनकर भी चन्द्रसेन जी उससे सहमत न हो सके। उन्होंने स्पष्टतः कहा—आपको बुरा मानने का कोई भी कारण मुझे दिखलाई नहीं देता। आप यह ग़लत समझ रही हैं कि अदन की दुर्घटना में मैं आपका विशेष हाथ या षड्यंत्र समझता हूँ। उससे आपको कोई लाभ कैसे होता? हाँ, उसमें कुछ बातें ऐसी हुई हैं जो यह बतलाती हैं कि आपसे दूसरों के षड्यंत्र को अनजान में सहायता मिल जाना असम्भव नहीं है। हम लोगों को उस ओर से सावधान रहना ही होगा।

इला—यदि अवस्था इतनी बुरी है तो मेरा आपके साथ रहना आपके लिए लाभदायक होने के स्थान पर निस्सन्देह हानिकारक है। आपने मेरे प्रति जिस तरह के दूरत्व भाव को अपना लिया है उससे भी यही प्रमाणित होता है। मुझे आप 'तुम' की जगह 'आप' तक तो कहने लगे हैं! और सिर्फ़ मुँह के शब्दों से नहीं, आँख से, हाथ से, अंग-अंग से किसी व्यक्ति के प्रेम, उपेक्षा, घृणा, वैराग्य, क्रोध, ईर्ष्या आदि के भाव मालूम हो जाते हैं। आपको मुझ पर विश्वास नहीं रह गया है—और उस अवस्था में, जब कि मेरा किसी तरह का रत्ती भर भी दोष नहीं है।

चन्द्रसेन––तुमने मुझे यह क्यों नहीं बतला दिया था कि तुम जिसके पास मुझे ले जा रही हो, उससे मेरा ऐसा झगड़ा भी हो सकता है?

इला––यही तो आप ग़लत समझते हैं कि मुझे पहले से यह मालूम था, या ऐसी कोई आशंका तक थी। ऐसा होता तो मैं स्वयं बराबर आपके पास रहती। मैं तो इस बात पर विश्वास करके कि उन्हें आपसे सचमुच ऐसी बातें करनी हैं जो सबके सामने नहीं की जा सकतीं, सब लोगों को वहाँ से हटा ले गई थी। अगर––

चन्द्रसेन––अच्छा, यदि इसे मैं मान लूँ, तब भी कोगाको को तो मेरे विषय में चिन्ता हुई, पर तुम्हें क्यों न हुई?

इला––कोगाको महाशय तो सभी को बेहद शक़ की निगाह से देखते हैं।

चन्द्रसेन––और उन्हीं की दृष्टि ठीक सावित हुई।

इला––मेरे बारे में भी?

चन्द्रसेन––मैं तुम्हारे बारे में ऐसा कैसे कह सकता हूँ, पर तुमने अपने आपको सन्देहजनक परिस्थितियों में तो डाल लिया था।

इला––यह मैं मानती हूँ, किन्तु इसका कारण मेरा उन महाशय में मूर्खतापूर्ण विश्वास था।

चन्द्रसेन––वही तो। ऐसा ही विश्वास न जाने कब किसका आप कर बैठें? पर जब मैं आपके साथ इस तरह बाहर आया हूँ तो मैं कोई ऐसी बात तो कर ही नहीं सकता जो अप्रिय या अनुचित हो। मैं यही कोशिश कर रहा हूँ कि फिर पहले ही की तरह का भाव तुम्हारे साथ रख सकूँ। पर अभी तक मुझे सफलता नहीं मिली।

इला––तो आप पहले इटली में ही उतरिएगा?

चन्द्रसेन--तुम इस बात के विरुद्ध व्यर्थ ज़िद करती हो। आखिर इसमें तुम्हारा कौन-सा नुक़सान है? यह सच है कि मैं वहाँ कुछ लोगों से मिलना भी चाहता हूँ, जो इस समय अपने देश की बहकाई हुई जनता से निर्वासित किये जाकर उस मुल्क में अपना समय काट रहे हैं। पर यह तो तुम भी चाहती थीं कि मैं उनसे मिलूँ।

इला--ज़रूर मिलिएगा, पर पहले स्विटज़रलैंड चलिए।

राजकुमार ने इला की ओर देखा। उसकी आँखों में उन्हें निर्मल प्यार दिखाई दिया और उसके भाव में गहरा उन्माद।

उन्होंने उसके हाथ को अपने हाथ से पकड़कर कहा--अच्छा, इस बार फिर मैं तुम्हारी ही इच्छा के अनुसार कार्य करने जा रहा हूँ। अब तो तुम प्रसन्न हो?

कमज़ोरप्रकृति के लोगों में चन्द्रसेन पहली पंक्ति के अधिकारी हैं!

१०

इधर कोगाको की इटैलियन जासूस से कई दिनों से कुछ विशेष बातचीत न हुई थी। इससे इटैलियन को बुरा मालूम हो रहा था। उसी की यह हार्दिक इच्छा थी कि जैसे हो, चन्द्रसेन और इला और कहीं न जाकर इटली में ही उतरें। सुअवसर ढूंढ़कर वह कोगाको को अपने कैबिन में ले गया। उसे पीने को उसने बढ़िया शराब दी और कहा—कैसी अजीब बात है कि रोमा जैसी सुन्दरी का उपयोग भी तुम एक ज़रा-से काम की सफलता के लिए नहीं कर पा रहे हो? इसमें हिचकिचाहट किसे है? तुम्हें या रोमा को? या यह राजकुमार ही ऐसा हो गया है कि उस पर किसी ऐसे शस्त्र का प्रहार नहीं किया जा सकता?

कोगाको ने कहा—एक नहीं, तीनों कारण इसके कहे जा सकते हैं। फिर भी मैं जो कुछ कर सकता हूँ, उससे बाज़ न रहूँगा। इससे मेरे देश के हित का भी तो सम्बन्ध है। मैं नहीं चाहता कि अब भी हिन्दुस्तानी राजा-महाराजा योरपीय युवतियों के पीछे दीवाने बने रहें और अपनी शक्ति तथा बुद्धि नष्ट करने के साथ-साथ अपने देश के ग़रीबों का धन इटली या फ़्रांस में बहाने जावें। आमोद-प्रमोद के स्थानों की एशिया में भी कमी नहीं है। संसार की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरियाँ एशिया में ही हैं, अन्यत्र कहीं नहीं।

इटैलियन हँसकर बोला—क्या आप लोग उनके कारबार का प्रबन्ध भी अपने हाथों में लेंगे?

कोगाको——क्यों नहीं ? प्रत्येक जीवित राष्ट्र को ऐसा करना पड़ता है। राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय बातों की जासूसी में कौन स्वतंत्र देश उनका उपयोग नहीं कर रहा है ? आप खुद ही रोमा को ऐसा साधन बनाने के लिए मुझसे कह रहे हैं। पर, इन बातों को हटाइए, अपनी वह कहानी आप आज पूर्ण कर दीजिए। मैं जानना चाहता हूँ कि उसका इस जहाज़ के किसी व्यक्ति से सचमुच कोई सम्बन्ध है या नहीं। वह जासूसी स्त्री रोज़ी यही रोमा तो नहीं है ?

इटैलियन——'लाल बुझक्कड़' की तरह बुद्धि दौड़ाने की ज़रूरत ही क्या है ? धीरज से काम लेने से समय पर सब कुछ अपने आप मालूम हो जावेगा। उस कहानी का आज अन्त तो नहीं हो सकता, किन्तु उसका अधिकांश आज समाप्त हो जावेगा। आप ध्यान से सुनिएगा।

कोगाको——मैं तो न केवल अपने कान, बल्कि दिल, दिमाग़, सब कुछ उधर ही लगाये बैठा हूँ। किस दल ने उस सुन्दरी की हत्या की थी जो उस अँगरेज़ से उन काग़ज़ों को लेने के लिए गई थी, यही पहले आपको बतलाना है।

इटैलियन——हाँ, उसकी हत्या 'लाल क़मीज़वालों' ने ही की थी। ज्यों ही वह उस अँगरेज़ के पास से लौटी त्यों ही उसका पीछा किया गया था। किन्तु जब उसके पास केवल कोरे काग़ज़ निकले तब वे लोग भी पछताये। इसी बीच में इटली और फ़्रांस की मिली हुई सरहदों पर कुछ झगड़े हुए। अँगरेज़ और अन्य देशवालों का ध्यान उनकी ओर गया। यह सभी जानते थे कि जो इटली अजगर की भाँति छोटे-छोटे राष्ट्रों को निगलता जा रहा था उसकी भूख की ज्वाला कितनी तीव्र है। वस्तुतः इस समय के सभी राष्ट्र पृथ्वी भर पर, नहीं सम्पूर्ण

संसार पर, जिसमें थल, जल, आकाश तीनों शामिल हैं, अपना आधिपत्य जमाना चाहते हैं। उत्पादक-यंत्रों और युद्ध के उपकरणों की वृद्धि के कारण वे इसे संभव समझने लगे हैं। पर अभी दो-तीन राष्ट्र मिलकर ऐसा आधिपत्य क़ायम करना चाहते हैं। इसी लिए गुट्टबन्दियाँ हुआ करती हैं। इटली और फ़्रांस दोनों लैटिन वंश के हैं। पर दोनों के स्वार्थों में यथेष्ट विरोध था। कुछ अन्य राष्ट्र इस विरोध को उकसाते रहते थे। रोज़ी को अपने देश इटली से कम प्रेम न था। उसने उस अँगरेज़ को अपने प्रेमी के रूप में पाकर उससे यह जान लिया था कि वे काग़ज़ असल में कहाँ पर हैं।

कोगाको—कहाँ पर थे ?

इटैलियन—यही तो बतलाता हूँ। उन्हें उस अँगरेज़ ने एक बैंक में जमा कर दिया था। वे वहाँ सर्वथा सुरक्षित थे। इसी लिए जब इटैलियन सरदार ने उसके यहाँ गुप्त रूप से तलाशी करवाई तब उसे कुछ भी न मिला। अन्त में उसने उस अँगरेज़ से स्वयं भेंट की और इसे धन का बहुत कुछ लालच दिया, किन्तु वह टस से मस न हुआ। इतना ही नहीं, धमकी की बात सुनकर उसने अपनी जातिगत तेजस्विता के अनुसार कह दिया कि वह सरदार चाहे जो कुछ करे, काग़ज़ों का पता उसे नहीं बताया जा सकता।

कोगाको—बेशक़ वह बहादुर और अपने वचन का पक्का था।

इटैलियन—क्यों नहीं। यह मैं पूरी तरह मानता हूँ कि वह वीर था और उस विश्वास के योग्य प्रमाणित हुआ जो उस 'लाल क़मीज़' वाले इटैलियन ने उस पर किया था। पर रोज़ी की ओर उसका प्रेम बढ़ता गया।

एक दिन उसने अपने विवाह का प्रस्ताव उससे कर दिया। रोज़ी ने कहा कि यह पता लगा लेना ठीक होगा कि माण्टीकार्लो में अँगरेज़ी गिर्जे में कब विवाह हो सकेगा। जब पता लगाकर उसे बतलाया गया कि तीन सप्ताह लगेंगे तब उसने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की। वह अँगरेज़ समझ नहीं सका कि यह प्रसन्नता कैसी बनावटी है !

कोगाको—असली बात क्या थी ? आपने तो उस दिन कहा था कि अपने देश के साथ विश्वासघात करने के कारण रोज़ी को ही दंड मिला !

इटैलियन—जो कुछ मैंने कहा था वह असत्य न था। उसने इन काग़ज़ों के उस अँगरेज़ के पास होने की सूचना जासूसी सरदार को समय पर न दी थी। जब दी तब वे बैंक पहुँच चुके थे। इससे वह सरदार इससे बहुत रुष्ट हो गया। रोज़ी से यह छिपा न था कि सरदार की इस नाराज़गी का नतीजा कैसा भयंकर हो सकता है। वह अँगरेज़ के प्रति अपना प्रेम बढ़ाती गई। इससे सरदार फिर प्रतीक्षा करने लगा। एक दिन उस सरदार ने उस अँगरेज़ को एक होटल में ज़हर मिली शराब दे देने का भी उपाय किया। संयोग से इस बार भी वह असफल रहा। किन्तु इसके बाद ही रोज़ी ने उस अँगरेज़ से कहा—इस सरदार को रोम वापस बुलाया जा रहा है और वह चाहता है कि मैं भी उसके साथ जाऊँ। अगर आप मेरा विश्वास कर सकें तो मुझे वे काग़ज़ दे दें मैं उन्हें ठीक दल के हाथों तक पहुँचा दूँगी।

कोगाको—क्या अँगरेज़ ने इसका विश्वास कर लिया ?

इटैलियन——हाँ, उसने इसका विश्वास कर लिया, यद्यपि बाद को इसके लिए उसे भी पछताना पड़ा।

जीवन-ज्योति ५४
जीवन-ज्योति ५४

११

जिसे संसार एक समय नन्दनविपिन समझा करता है, वहीं प्राकृतिक नियमों के अनुसार ताण्डव नृत्य का रौद्र अवश्य दिखाई देने लगता है, जहाँ धर्मध्वजी कुछ समय तक साधना-मन्दिर बनाये रहते हैं वहीं वलिगृहों की चीत्कारें सुनाई देने लगती हैं, जहाँ पुष्प-शय्यायें बिछा करती हैं, वहीं लौह कारागार बन जाता है । राजकुमार चन्द्रसेन ने ऐसा कभी सोचा भी न था, पर उन्हें जान पड़ने लगा कि इस समय वे इसका स्वयं अनुभव करने लगे हैं ।

मानव-शरीर को सर्वश्रेष्ठ सृष्टि मानने में वैज्ञानिक और धार्मिक लोग एकमत हैं। चन्द्रसेन भी इससे कभी असहमत नहीं हुए थे, पर अब उन्हें जान पड़ता है कि मनुष्य से दुर्बलतर प्राणी संसार में कोई भी नहीं है। वह वासनाओं का ही समूह है और उन वासनाओं को भी सामञ्जस्य में रखने की शक्ति उसमें नहीं है । आश्चर्य की बात यही है कि यह सामञ्जस्य उन्हें परमावश्यक जान पड़ने लगा था। वे अपने मन के इस विचित्र परिवर्तन से स्वयं एक प्रकार के भय से अभिभूत हो गये थे । अगर उनका वश चलता तो वे इस समय 'हिन्दुस्तानीपन से ही नहीं, साधारण 'मानवता' से भी अपना सब सम्बन्ध तोड़ डालते और किसी न किसी पक्षी का रूप धारण कर लेते, किन्तु यह तो वे उस समय भी नहीं भूल सकते थे कि इन दो बातों में से कोई भी उनके हाथ में नहीं है---न तो वे आदमी से और कुछ हो सकते हैं, न अपने हिन्दुस्तानीपन को ही मिटा या हटा सकते हैं।

वे जानते थे कि इस देश में ऐसे लोगों की कमी नहीं है जिनमें अपना 'हिन्दुस्तानीपन' मिटाने के लिए उन्हीं की जैसी प्रबल इच्छा है और वे अपने को हिन्दुस्तानी कहने या मानने में बहुत ही लज्जा का अनुभव करते हैं, किन्तु वे बेचारे करें तो क्या करें ? अपने रूप-रंग को, जो इस देश के वायुमंडल से ही उत्पन्न हुए हैं बदल डालना इस उन्नत वैज्ञानिक युग में भी असम्भव ही है ! हम न तो यूरोप तथा, अमेरिका आदि देशों के निवासियों की तरह के हो सकते हैं, न अरब, टर्की, फ़ारस, जापान, रूस आदि के लोगों की भाँति के ही। हमारी आकृति तो जैसी है वैसी ही रहेगी, प्रकृति में ही परिवर्तन हम कर सकते हैं।

कभी-कभी चन्द्रसेन मन ही मन कहते—बौद्ध-धर्म ने हमें संसार के आधे से अधिक लोगों के साथ मिला दिया—जापान, चीन आदि सभी हमारे सहधर्मी हो गये, किन्तु इस जलवायु की भिन्नता पर उनका कुछ वश न चला, आकृति अलग ही अलग रही। क्या इसी कारण राष्ट्रीयता पर अन्तर्राष्ट्रीयता विजय नहीं पा सकती! अब सभी देश अपने को ही विशेष साहसी, सैनिक और दूसरों पर शासन करने के योग्य समझ रहे हैं। मूर्ख देशों या छोटे राष्ट्रों को तरह-तरह के धार्मिक मतभेदों और आर्थिक कठिनाइयों में डालकर ये अपना अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं! शायद हम लोगों ने भी कभी ऐसा किया था, तभी तो रोम के एक पुराने लेखक, लीनी ने अपने देश का सोना हिन्दुस्तान-द्वारा लूटे जाने की शिकायत की थी। पर उस लूट की इस समय की लूट से क्या तुलना ? इस समय तो उस समय की अपेक्षा सैकड़ों अरबों गुना लूट संभव हो गई है।

कोगाको की राष्ट्रीय बातें सुन-सुनकर चन्द्रसेन एक ओर इस प्रकार सोचने लगे तो दूसरी ओर उनके हृदय में अपने गृह के प्रति भी एक नई ममता का संचार हुआ। हम सब सामाजिक प्राणी हैं। पैदा होते ही समाज से हमारा सम्बन्ध हो जाता है। पिता, माता, भाई, बहन आदि के प्रति हमारा स्वाभाविक प्रेम होता है। चन्द्रसेन का ख्याल था कि वे ऐसे निराले स्वभाव के हो गये हैं कि अब उनके हृदय में इनमें से किसी के प्रति कोई विशेष भाव शेष नहीं है। उन्होंने अब समझा कि ऐसा सोचकर उन्होंने कितनी बड़ी भूल की थी। उनके सामने इन सबकी शक्लें बार-बार आने लगी थीं, और उन्हें मालूम होता था कि वे सब उन्हें धिक्कारती हैं—तुम इस तरह भाग खड़े हुए ? तुम्हें न अपने घर के प्रति उचित आकर्षण हुआ, न अपने समाज के प्रति, न अपने देश के प्रति ! अपनी छोटी मा के अपार स्नेह की उपेक्षा कर रहे हो? तुममें ऐसी दुर्बुद्धि और निर्लज्जता आ गई ?

चन्द्रसेन अपने साथ अन्य चार लोगों में से दो को तो केवल इसलिए लिवा लाये थे कि उनके सहयोग से वे अपना मन यथेष्ट प्रसन्न रख सकेंगे। पर इसमें इतने शीघ्र वे अकृतकार्य हो गये। वाद-विवाद, कविता, संगीत सब उन्हें व्यर्थ जान पड़ने लगे।

उनके इन दो साथियों में से एक का नाम रामविलास था और दूसरे का ब्रजकिशोर। दोनों एक दूसरे के विरोधी थे। किसी समय उनसे भी चन्द्रसेन का यथेष्ट मनोरंजन होता था। रामविलास पुरानी 'आर्य-सभ्यता' की प्रशंसा करते नहीं अघाते थे, उनके लिए संसार में जो कुछ भी हुआ है और हो सकता है, उन सबका श्रेय है उन्हीं आर्य ऋषियों के दिव्य वाक्यों और ईश्वरप्रणीत वेदों को। वे यह कभी न मान

सकते थे कि एक-एक वैज्ञानिक सत्य के पीछे सैकड़ों वर्षों का इतिहास है और अनेक आधुनिक साधकों की एकान्त तपस्या। व्रजकिशोर अपने देश के भिन्न-भिन्न राष्ट्रीय दलों में काम कर चुके थे, कभी एक में कभी दूसरे में। उन्हें राष्ट्रीय दल और धार्मिक दल भी आर्थिक स्वार्थ और पदाधिकार की अभिलाषा से ही प्रेरित जान पड़ने लगे थे। वे उन सब दलों से अलग होकर 'मनमौजी' ढंग से चलने लगे थे। उसी समय उनकी भेंट चन्द्रसेन से हुई थी।

चन्द्रसेन ने अब इन दोनों के पास घंटों बैठकर उनके घर-द्वार, मा-बाप, भाई-बहन, अड़ोस-पड़ोस, गाँव-बाजार आदि का हाल विस्तृत रूप से पूछा और उनके सम्पूर्ण जीवन की छोटी से छोटी बातों को जान लिया। इसी प्रकार कोगाको के जीवन-वृत्तान्त को भी उन्होंने विस्तारपूर्वक सुना। पर इस सबका भी वैसा कुछ फल न हुआ जैसा वे चाहते थे। उनकी अशान्ति कम न हुई।

संसार की जो खबरें प्रतिदिन मिलती थीं, उनमें या उन पुस्तकों में, जिन्हें वहाँ पढ़ सकते थे, उनका मन न लगा। अन्त में उन्होंने अपने को बहकाना बन्द कर दिया। उन्होंने तथ्य का सामना करने का निश्चय कर लिया। यदि वे कविता करना या कहानी लिखना या ऐसी ही और कोई 'कला', जानते होते तो शायद उनकी ऐसी अवस्था इतनी जल्दी न हो जाती--वे अभी बहुत समय तक अपने को बहकाते रह जाते। एक समय उन्हें 'संगीत-कला' का विशेष शौक़ हुआ, किन्तु वह भी स्थायी न हो सका।

अदन की दुर्घटना ने चन्द्रसेन के मन के भीतर आशंका की एक तीव्र ज्वाला उत्पन्न कर दी थी। 'संभव था मेरी मृत्यु भी हो जाती--

संभव क्या, अवश्य हो जाती ! वह आदमी चाहता था कि मैं अदन में दो दिन रहूँ और मैं यह कर न सकता था । ऐसे मनुष्य से मिलाने में इला की वास्तविक मंशा क्या थी ?' इस प्रश्न को उन्होंने सैकड़ों बार अपने आपसे पूछा था। परन्तु उन्हें संतोषजनक उत्तर कभी न मिला।

तब एक दिन उन्होंने एक राजकुमारी को एक पत्र लिखा।

चन्द्रसेन की यात्रा के दूसरे महीने ललितसेन पढ़ना छोड़कर चले आये। उसके बीस दिन बाद वे उन महाराज के यहाँ चले गये, जो उनके भाई को चाहते थे। एक मास के भीतर चन्द्रगढ़ के महाराज ने उन्हें बाक़ायदा अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

इसके दस-बारह दिनों बाद ही एक दिन इन महाराज ने ललितसेन को बुलाकर इधर-उधर की कई बातें करने के पश्चात् कहा—शायद तुम यह जानते हो कि मैंने यह निश्चय कर लिया था कि मैं जिसे अपना उत्तराधिकारी बनाऊँगा, उसका विवाह शिवपुर की राजकुमारी के साथ करूँगा।

ललितसेन ने उत्तर दिया—आपकी इच्छा मेरे बड़े भाई चन्द्रसेन जी को लेने की थी। इससे आपने उस राजकुमारी के साथ उन्हीं का विवाह करने का विचार किया था। मैंने सुना है कि उन्होंने उस राजकुमारी को देखा भी था और संभव है कि राजकुमारी ने भी उन्हें देखा हो। आशा है, आप इसे मेरी ढिठाई या लज्जा की सीमा के बाहर की बात न समझेंगे, अगर मैं यह कहूँ कि उस राजकुमारी के साथ मेरे बड़े भाई का ही विवाह होना चाहिए, न कि मेरा।

महाराज ने कहा—क्या तुमने उस राजकुमारी को देखा है कभी ?

ललितसेन ने आँखें नीची किये हुए कहा—नहीं, मैंने नहीं देखा और अभी मैं देखना भी नहीं चाहता। हाँ, जब मेरे बड़े भाई का विवाह उनसे हो जावेगा तब मैं उनके दर्शन अवश्य करूँगा।

महाराज जोर से हँसे और कहने लगे—जब मैंने तुम्हें ले लिया तब तुम्हारा सम्बन्ध मेरे परिवार से ही हो गया, पुराने परिवार से छूट गया। अब तुम्हें चन्द्रसेन को 'बड़ा भाई, बड़ा भाई' कहने का अधिकार नहीं है।

वे राजकुमारी अपने एक सम्बन्धी के यहाँ आई हैं और तुम्हें भी आज वहीं जाना है, इसलिए मैंने तुमसे यह सब बातचीत की है। वहाँ तुम मेरे लड़के की हैसियत से ही जाओगे। अपने पहले परिवार के बारे में तुम वहाँ विशेष बातें न करना। वैसे हिन्दू-शास्त्रों में देवर को दूसरा वर मानने में आपत्ति नहीं है और यहाँ अनेक जातियों में ऐसा रिवाज है भी—

बात काटकर ललितसेन जी ने कुछ उग्र स्वर में कहा—वैसा रिवाज किसी उच्च जाति में तो है नहीं!

महाराज ने तीक्ष्ण हँसी के बाद कहा—उच्च जाति किसे कहते हैं? मैं तो असली उच्च जाति उन्हें ही मानता हूँ, जिनमें अब भी पंचायत-प्रथा है, बल्कि पंचायत का ही राज है, जिस जाति के लोग अब भी अपनी स्त्रियों को पर्दे में बन्द नहीं किये हैं, बल्कि स्त्री-पुरुष दोनों अधिकतर एक-से ही कार्यों को करते हैं और वैदिक धर्म की अधिकांश बातों का अब तक व्यावहारिक रूप में पालन करते हैं। हम लोग तो, सच पूछा जाय तो, केवल लुटेरे हैं और किसी भी जाति, वर्ण या धर्म के नहीं हैं।

ललित ने मन ही मन कहा—ये सब बातें इस समय मेरे सामने कहने के लिए हैं। ये यदि वस्तुतः ऐसा समझते तो मुझे क्यों लेते? उन्हीं जातियों में से किसी को क्यों नहीं ले सके?

उसे चुप खड़ा रहते देख, महाराज ने पूछा—क्या मेरा कहना तुम्हें ठीक नहीं जँचता? तुम वहाँ जाकर देखना, राजकुमारी बहुत सुन्दरी और सुशिक्षिता हैं। तुम उन्हें देखने पर स्वयं ही मुझसे यह प्रार्थना करोगे कि तुम्हारा विवाह उन्हीं के साथ करा दिया जावे।

ललितसेन ने कहना चाहा—'मैं ऐसी प्रार्थना इस जन्म में कभी न

करूँगा।' पर वे रुक गये। कमरे में टँगे हुए एक फ़ोटो के ऊपर से कपड़ा हटाकर महाराज ने कहा—देखो, यह उन्हीं का फ़ोटो है।

राजकुमार ने देखा कि राजकुमारी का सौंदर्य सचमुच असाधारण है। वे ज्यों के त्यों चुप खड़े रहे।

महाराज ने कहा—अब जाओ। अभी एक घंटे के भीतर मोटर तुम्हें लिवाने आवेगी।

ललितसेन प्रणाम करके दूसरे कमरे में चले गये और वहाँ बैठकर गहरे सोच-विचार में पड़ गये।

१३

राजकुमारी सुधा की ललितसेन से बात-चीत हो सके, इसका संतोष-दायक प्रवन्ध कर दिया गया था। पहले तो ललित ने इधर-उधर की दो बातें की। फिर बोले—मेरे भाई ने आपके साथ अपना विवाह करना चाहा था।

सुधा—उन्होंने मेरे साथ अपना विवाह कर लिया है।

ललित का हृदय इस उत्तर से गद्गद हो गया। उन्होंने कहा—सम्भव है—पर जो विवाह समाज के सामने किया जाता है, केवल उस पर ही समाज अपनी स्वीकृति देता है। आपके इस विवाह को तो आप दोनों को या शायद अकेले आपको छोड़कर और कोई भी नहीं जानता।

सुधा—ऐसा नहीं है। मैं आस्तिक हूँ। इस संसार की सबसे बड़ी और सर्वव्यापिनी शक्ति ने ही हमारे विवाह की स्वीकृति दी है।

ललित०—यह तो आपके हृदय और मन की भावना है।

सुधा—क्या आप नास्तिक हैं?

ललित०—अगर ऐसा कहने के कारण मैं नास्तिकों की कोटि में आता होऊँ तो मैं अवश्य ही नास्तिक हूँ। यह जबान सावित्री, सत्यवान की नहीं है। इस समय तो मैं यही देखता हूँ कि प्रत्येक युवक और प्रत्येक युवती की शादी की बात-चीत कई जगह होती है। फिर उन्हीं में से किसी एक जगह उनका विवाह हो जाता है।

सुधा—तो क्या आप भी अपने साथ विवाह करने के लिए मुझसे कहना चाहते हैं?

ललित०——अगर मेरे बड़े भाई के साथ सचमुच आपका विवाह हो गया है, तो मैं ऐसा अनुचित काम करने की इच्छा को अपने मन में कोई स्थान नहीं दे सकता।

सुधा——पर आप तो यही मानते हैं न कि ऐसा नहीं हुआ?

ललित०——मेरे मानने न मानने से क्या है, जो बात सत्य हो, वह मुझे आप बतला दें। आजकल क्या इस तरह भी विवाह हो जाना संभव है कि भाई होने पर भी मुझे पता तक न चले?

सुधा——मेरी बात तो आप असत्य मान रहे हैं।

ललित०——अभी आपने पूरी बात बतलाई ही नहीं। आपका विवाह कैसे हो गया? जैसे सावित्री ने अपने मन में निश्चय कर लिया था उसी तरह, या सचमुच?'

'सचमुच कैसे?'

'शास्त्रों में बताये हुए आठ प्रकारों में से किसी एक प्रकार से या आजकल के क़ानूनों में से किसी एक के अनुसार!'

'क्या कोई नवाँ क़ायदा नहीं हो सकता?'

'मुमकिन है, पर आप मुझे उसे बतला दें।'

सुधा——क्यों? मेरे बतलाने न बतलाने से क्या होगा? जब रुपयों के या पद के लोभ से आपने अपने असली मा-बाप को छोड़कर दूसरों को अपना मा-बाप बना लिया, तब दूसरे की स्त्री को यह कहकर अपनाने को आप ज़रूर आगे बढ़ सकते हैं कि उसका विवाह शास्त्र या समाज के अनुकूल नहीं है और जिसके साथ हुआ है वह उसे छोड़कर भाग गया है तथा अब वह आपका भाई नहीं रह गया है। पर यह सब मेरे सामने चल नहीं सकता।

में जाती हूँ। ऐसी बातें करने को इस ज़िन्दगी में मुझसे अब कभी न मिलिएगा।

किन्तु इसके पहले कि वह जा सके, ललितसेन उठकर उसके आगे खड़े हो गये और बोले—कृपया बैठ जाइए। आपके साथ विवाह करने की इच्छा से मैं यहाँ नहीं आया था। पर बिना कुछ जाने-समझे आपने मेरा यथेष्ट अपमान किया है। जो विवाह आपने छिपकर या केवल अपने मन से कर लिया है, उसे न तो आपके मा-बाप मानेंगे, न समाज। आपके पिता की पूरी इच्छा है कि आपका विवाह मेरे साथ हो। आप उनकी इच्छा के विरुद्ध कुछ भी न कर सकेंगी। मेरे भाई ने मुझसे यह कभी नहीं कहा कि उन्होंने अपना विवाह आपके साथ किया है। उन्होंने बम्बई जाते समय तक सब लोगों से अपने को अविवाहित ही कहा है। वे मुझसे ऐसी बात कभी न छिपाते। फिर भी मैं उन्हें पत्र लिखकर पूछूँगा और यदि उन्होंने मुझे लिख दिया कि मेरा आपके साथ विवाह करना अनुचित नहीं है तो आपको मेरे साथ अपना विवाह करना ही होगा। मैंने सुना था कि आपका नाम सुधा है। तब आप ऐसे विषपूर्ण वाक्यों से अपनी ज़बान को गन्दी क्यों करती हैं?

सुधा ने उग्र स्वर में कहा—'विवाह करना ही होगा! ज़बान गन्दी करती हूँ! खूब, आप होश में हैं या नहीं। मेरा नाम सुधा होने के कारण आप यह न समझ लीजिए कि मैं अन्यायी के साथ भी कोमलता और नम्रता से बातें करूँगी! मैं राजकुमारी हूँ, और वैसे वंश की नहीं हूँ जो अपने मा-बाप को छोड़कर इस तरह दूसरों को अपना मा-बाप कह देते हैं!'

इतना कहकर सुधा तेजी के साथ भीतर चली गई।

दो दासियाँ दरवाज़े के क़रीब कुछ दूरी पर बैठी थीं। उसके चले जाने पर वे भी भीतर गईं।

जब ललितसेन लौटकर अपने राजस्थान में आये तब महाराज ने अन्य बातों के बाद उनसे राजकुमारी सुधा के बारे में पूछा। ललित ने कहा—वे मेरे साथ अपना विवाह नहीं करना चाहतीं। कहती हैं कि उनका विवाह मेरे भाई के साथ हो गया है। मैंने भाई को एक पत्र लिख दिया है। अगर वे आज्ञा देंगे तो मुझे उनके साथ अपना विवाह करने में कुछ भी आपत्ति नहीं है।

महाराज—और अगर वे आज्ञा न दें ?

ललित०—तो मैं दूसरी जगह विवाह कर लूँगा।

महाराज—और अगर नहीं करने को कहा जावे ?

ललित०—तो सुधा सुधा न रहकर विषमयी हो जावेगी। उस विष को अपनी इच्छा से तो मैं अपनाना न चाहूँगा।

महाराज—मेरी आज्ञा से ?

ललित०—सुधा विष-पान कर लेगी, पर मेरे साथ अपना विवाह न करेगी।

महाराज—अगर करे ?

ललित०—तो भाई की आज्ञा पाकर मैं भी कर लूँगा।

महाराज—बिना उसकी आज्ञा के ?

ललित०—वे आज्ञा दे देंगे। अगर उन्होंने इनके साथ अपना विवाह किया होता या करना चाहते होते तो मुझसे ज़रूर कहते और इस तरह बम्बई तथा विदेश न जाते।

'तब लिखकर पूछने की क्या जरूरत है ?'

'हानि ही क्या है?'

'व्यर्थ की देरी होगी।'

'क्या आप चाहते हैं कि तुरन्त ही मेरा विवाह हो जावे?'

'हाँ।'

'नहीं, मैं ऐसा नहीं कर सकता।'

'मेरे कहने से भी नहीं?'

'आप मेरी आत्मा पर कभी अत्याचार न करना चाहेंगे।'

'यह तो अत्याचार नहीं है।'

'मुझे तो ऐसा ही मालूम होगा।'

'उससे क्या?'

'नहीं, मैं अपनी आत्मा के प्रति ऐसा अन्याय नहीं कर सकता।'

'बस करो—क्या जानो तुम आत्मा कहते किसे हैं? अगले महीने में तुम्हारा विवाह सुधा के साथ होगा। जाओ।'

ललितसेन चले आये। अपने कमरे में आकर उन्होंने ज़ोर से कहा—यह नहीं हो सकता, किसी तरह नहीं। जब तक सुधा मेरे साथ विवाह के लिए अपनी हार्दिक स्वीकृति न देगी, मैं उसके साथ अपना विवाह नहीं कर सकता। अगर ज़रूरत होगी तो अपनी इस बात की पूर्ति के लिए मैं सब कुछ त्याग कर दूँगा—सब कुछ।

१४

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

किन्तु इसके बाद जो कुछ हुआ उसकी आशा किसी को भी न थी। चन्द्रसेन ने जहाज़ पर से ही एक लम्बा पत्र अपने भाई ललितसेन के नाम भी भेजा, जिसमें उन्होंने अन्य बातों के साथ लिखा——

"महाराज प्रभाकरदेव तुमसे यह अवश्य कहेंगे कि तुम अपना विवाह सुधा के संग कर लो। मैं भी यही ठीक समझता हूँ। जब मैं सुधा से मिला था तब मैंने जान-बूझकर उससे 'इला' की खूब बड़ाई की थी——यहाँ तक कहा था कि इला के समान बुद्धिमती और गुणवती तथा साहसी स्त्रियाँ यदि इस संसार में आठ-दस सौ भी हों तो इसमें लड़ाई-झगड़ा बन्द होकर स्थायी शान्ति और वास्तविक मानवता की नींव पड़ना नामुमकिन न रहे। मैं जानता हूँ कि सुधा अपने देश के प्रति भक्ति रखती है और उसके उत्थान में ऐसा भाग लेना चाहती है जैसा शायद अब तक हमारे यहाँ की वर्तमान राजकुमारियों या रानियों में से अन्य किसी ने भी नहीं लिया। पर मुझे यह भी विश्वास है कि तुम्हारे लिए भी यह संभव है कि तुम उसके अनुकूल बन जाओ और सुधा के लिए यह असंभव नहीं कि वह तुम्हें अपने अनुकूल न बना ले। इस पर खूब विचार करना। आवश्यकता समझना तो मेरा यह पत्र सुधा को दिखला देना। नीचे लिखे पते से सब हाल विस्तृत रूप से मुझे लिखना। तुम दोनों की पूर्ण उन्नति का मैं हृदय से अभिलाषी हूँ।"

ललितसेन ने इस पत्र को कई बार पढ़ा। बाद को उसने इसकी प्रतिलिपि रख कर इसे सुधा के पास भेज दिया, अपनी ओर से एक शब्द भी नहीं लिखा।

सुधा ने इस पत्र को दो बार पढ़ा और टुकड़े-टुकड़े करके फेंक दिया। उसी दिन वह स्त्रियों की एक सभा की नेत्री बनने चली गई।

१५

ललितसेन ने समझा था कि उसके नये घर में उसे शान्ति मिलेगी, विस्तृत कार्य-क्षेत्र मिलेगा, यश प्राप्त होगा और सच्चा सुख भी मिल सकेगा। इसी प्रकार उसने सोचा था कि वह यहाँ अपने पिता का-सा ही स्नेह और ऐसा नवीन प्रेम पा सकेगा जो उसके जीवन को नई स्फूर्ति और नये आनन्द से भर देगा। किन्तु उसे मिली चिन्ता, क्लान्ति और इनसे उत्पन्न घोर अशान्ति। सबसे बढ़कर दुःख उसे यह था कि उसे अपने नव परिचित लोगों में से किसी से भी सच्चा प्रेम पाने की आशा नहीं होती थी।

महाराज प्रभाकरदेव को उसके वर्तमान ढंग से विरक्ति हो रही थी। वे चाहते थे कि वह बड़े-बड़े लोगों और विशेषतः बड़े-बड़े अफ़सरों से अपनी घनिष्ठता कर ले। राज-काज में भी वे उससे कुछ न कुछ काम बराबर लेना चाहते थे। प्रजा में जिस असंतोष का भाव बढ़ रहा था उसे तुरन्त रोक देना बल्कि नष्ट कर देना वे अत्यावश्यक समझते थे। किन्तु ललित इन विषयों में उनकी एक भी न सुनना चाहता था। वह अब भी संसार के भावी रूप के बारे में और आगामी समय के सम्बन्ध में प्रधान विचारकों की पुस्तकें और उनके लेख पढ़ा करता था। सम्भव है, उसने अशान्ति से बचे रहने के लिए ही ऐसा करना चाहा हो, पर अब उसे इस विषय में एक नवीन रुचि हो गई थी और वह कितनी ही नई पुस्तकें मँगा रहा था। यह देखकर एक दिन महाराज ने उसे अपने पास बुलाकर कहा—'बाप न मारा पेंड़की बेटा तीरन्दाज़!' क्या तुम मेरे यहाँ इसलिए आये हो कि इतने परिश्रम से बनाया हुआ मेरा यह राज-पाट सब स्वाहा कर दो? धूर्त

लेखकों की बातें क्यों पढ़ा करते हो ? क्या तुम नहीं जानते कि इन सबका मुख्य उद्देश्य है लोगों को उल्लू बनाकर उनसे रुपये ऐंठना ? इस दुनिया को चलते दो अरब वर्षों से अधिक हो गये, पर क्या कभी ऐसा हो सका है कि सचमुच समता का राज्य हो जावे, कोई भी अन्याय न रहे और सभी बुराइयाँ दूर हो जावें ? जो बात कोई नहीं कर सका उसी को ये पागल लेखक लोग किस तरह कर देंगे ? खाओ-पिओ और चैन करो, इसी लिए तुम दुनिया में आये हो। मैं दुनिया की भलाई करने या भगवान् को याद करने से तुम्हें कदापि नहीं रोकना चाहता, पर यह सब समाज-सेवा, लोकतंत्र की सेवा या मूर्खों और पागलों आदि की सेवा का खप्त छोड़ दो। सीधी तरह सुधा से अपना विवाह कर लो और एक महाराज के पुत्र के उचित गौरव और शान के साथ रहो।

ललित अन्तिम वाक्य से जैसे बहुत बड़ा सहारा पा गया। उसने कहा—आपकी चाहे जितनी अधिक इच्छा हो, किन्तु सुधा और उसके पिता की इच्छाओं के विरुद्ध तो आप मेरा विवाह वहाँ करा नहीं सकते ? अच्छा—

महाराज ने बात काटकर कहा—अच्छा-वच्छा कुछ नहीं। मैं यह विवाह ज़रूर करा सकता हूँ। मुझे और किसी की नहीं तुम्हारी ही इच्छा जानने भर की ज़रूरत है। तुम राज़ी हो गये हो ?

सिर नीचे किये हुए, धीमे स्वर में ललित ने कहा—मैं आपकी इच्छा का विरोध नहीं करना चाहता।

महाराज जोर से हँसे। बोले—इतनी छोटी उम्र में मुझे ही चराना चाहते हो ? सुधा को देख आये हो। उससे यह प्रतिज्ञा भी कर आये

होगे कि जल्दी से जल्दी उससे विवाह कर लोगे और अब मुझसे ऐसी बात बनाने चले हो ?

ललितसेन ने अपना सिर उठाकर महाराज की ओर देखा और कुछ उग्र स्वर में कहा—मुझे झूठ बोलने का अभ्यास नहीं है। सुधा ने जो आपत्तियाँ इस विवाह के बारे में प्रकट की थीं वे सब ज्यों की त्यों, मैंने आपको बतला दी थीं। भाई साहब का जो पत्र आया था उसे भी मैंने आपसे नहीं छिपाया।

महाराज ने कहा—कृष्णकुमार नामक एक स्वयंभू नेता इस राज्य के लोगों को मनमाने ढंग से बहका रहा है। तुम कुछ लोगों के साथ आज ही उससे मिलने के लिए रवाना हो जाओ। जब तुम्हारे विवाह को केवल पन्द्रह-बीस दिन रह जावेंगे, तब मैं तुम्हें बुला लूँगा। तब तक तुम सब जगह घूमकर लोगों को सच्ची बातें समझाओ। राजा ही प्रजा का सच्चा पिता और सबसे बढ़कर हितैषी है। यह शास्त्रों का मत है। इसे किसी को अज्ञान या घमंड के कारण भूल न जाना चाहिए।

ललित ने कहा—मैं आज ही जाऊँगा, पर यह विवाह नहीं हो सकता। आप अपना अपमान न कराइए।

महाराज ने फिर हँसकर कहा—अपने मान-अपमान का मैं तुमसे कहीं अधिक ध्यान रखता हूँ। सुधा के पिता ऐसा दुस्साहस नहीं कर सकते कि मेरी बात न मानें और सच तो यह है कि ऐसे विवाहों में जिस शक्ति का हाथ रहता है उसके विरुद्ध वे क्या बोलेंगे ? बस, जाओ।

किन्तु ललित वहीं खड़ा रहा। तब महाराज ने कहा—अब क्या चाहते हो ?

ललित०—इस प्रकार अनुचित दबाव डालकर विवाह करना भी क्या राजधर्म ही है ?

महाराज की भौंहें टेढ़ी हो गईं। उन्होंने कहा—हाँ, यही राजधर्म है। कौन-सा काल ऐसा हुआ है जिसमें राजाओं ने जबरदस्ती विवाह नहीं किया ? तुम भी इसके लिए तैयार हो जाओ।

ललित नाराजी का भाव दिखाते हुए वहाँ से तेजी से चल दिया, किन्तु अन्तर्यामी की शक्ति से यह छिपा न था कि वह मन ही मन प्रसन्न ही था।

१६

उसी दिन महाराज ने सुधा के पिता को एक पत्र लिखा, जिसकी कुछ पंक्तियाँ ये थीं--

"आपसे यह छिपा नहीं है कि सुधा का झुकाव एक ऐसी दिशा की ओर हो रहा है जो किसी राजकुल के लिए शोभाप्रद नहीं हो सकता। क्या उस पर चन्द्रसेन का ऐसा बुरा प्रभाव इतनी जल्दी पड़ गया था। या आज-कल की अनेक विषैली पुस्तकों का यह कुप्रभाव है ? जो हो, चन्द्रसेन की तरह सुधा को अलग तो किया नहीं जा सकता। और, उसके सुधर जाने में संदेह ही किसे हो सकता है ? बीस-बाईस या चौबीस तक की अवस्था-वालों के लिए आज-कल के वातावरण में एक ऐसा भयानक नशा रहता है, जिससे सीधी तरह छुटकारा नहीं पाया जा सकता। ऐसे लोगों के सुधार के बारे में यह सोचना व्यर्थ है कि हमारे कार्यों से उनके मन पर कुछ आघात न पहुँचे। मा-बाप अपनी संतानों के सच्चे शुभचिन्तक होते हैं, इसी लिए उन्हें ऐसे कामों के करने का भी अधिकार प्राप्त होता है जिसकी आवश्यकता वे उनकी उन्नति के लिए समझते हैं, चाहे वह काम उनके लिए पहले अरुचिकर या कष्टप्रद ही क्यों न हो। सुधा के प्रति भी आपका ऐसा ही कर्त्तव्य है।

"सौभाग्य से ललित का भी सुधा की ओर कम आकर्षण नहीं है। वह बातें तो बड़ी-बड़ी करता है, किन्तु हम लोगों के लिए यह देख लेना कठिन नहीं है कि सुधा का रूप और सुधा की उसके प्रति विरक्ति, ये दोनों मिलकर उसके लिए अत्यधिक मोहक हैं। उसे प्रजा को समझाने के

सुकार्य के लिए मैंने पन्द्रह दिनों के वास्ते भेजा है और मैं चाहता हूँ कि इसी बीच में उसके विवाह के बारे में पूरा निर्णय हो जाय। आशा है, आप भी इसमें विलम्ब करना उचित न समझते होंगे।"

यह पत्र जब सुधा के पिता को मिला तब उन्होंने इसे पढ़कर अपने एक बक्स से एक पत्र और निकाला और उसे भी एक बार फिर पढ़कर इसके बाद कुछ देर तक सोचते रहे। अन्त में उन्होंने एक नौकर को बुलाया।

१७

सुधा के पिता ने सुधा के पास दो पत्र एक साथ भेजे। इनमें एक तो वही था जो उन्हें आज ही ललितसेन के साथ सुधा का विवाह कर देने के लिए मिला था और दूसरा था चन्द्रसेन का सुधा के नाम का एक पत्र, जिसे उन्होंने कुछ समय पहले पाया था, पर अब तक सुधा को देना उचित नहीं समझा था।

सुधा ने दोनों पत्रों को ध्यान से पढ़ा। ललितसेन के साथ विवाह करने के बारे में महाराज ने जो पत्र भेजा था उसे फाड़कर उसने फेंक दिया और चन्द्रसेन के पत्र को एक बार फिर पढ़ा। "तुम विश्वास करो या न करो, किन्तु जैसे मैं अपने देश से दूर होता जा रहा हूँ वैसे ही वैसे मेरा हृदय उससे और भी ज़ोरों के साथ चिपटता जा रहा है। मैं यह देख रहा हूँ कि मैंने और चाहे जो कुछ खोया हो, पर अपने आपको इतना बुरी तरह कभी नहीं खोया जितना कि पश्चिम और पाताल के लोग इस ढाई तीन सौ साल से भी कम की वैज्ञानिक कही जानेवाली उन्नति से मदान्ध होकर अपने आपको खो रहे हैं। इन्होंने तो अपने वास्तविक आधार या सर्वस्व नष्ट करने के ढंगों का नाम ही 'सभ्यता' रख लिया है। हमारे देश के अनेक लोग इन्हीं की बातों से बेहद प्रभावित हो चुके हैं और फलतः अपने यहाँ की किसी बात में भी पूरी तरह विश्वास नहीं कर सकते, जब तक उसका समर्थन ये लोग न करें। यह कुछ तो पराधीनता का और बहुत कुछ इन लोगों के मनमाने प्रचार का दुःखद परिणाम हुआ है। मुझे तुम्हारे मन पर ऐसा कोई प्रभाव न देखकर बहुत आश्चर्य और साथ ही बहुत आनन्द हुआ

था। मेरे विषय में तुमने बहुत-सी बुरी बातें सुनी होंगी। पर यह न भूल जाना कि वे किसके द्वारा कही और फैलाई जा रही हैं।

मैं मानता हूँ कि मैं दूध का धोया हुआ नहीं हूँ और मेरा दावा है कि एक हजार में नौ सौ निन्यानबे से भी अधिक लोग यदि वे सच बोल सकें तो, यही बात कहेंगे। इसमें कोई आश्चर्य या विस्मय की बात भी नहीं है, क्योंकि मानव-शरीर वासनाओं का समूह है और वासना का अर्थ ही है कमज़ोरी। यदि हममें वासना न होती तो हम मनुष्य शरीर में आते ही नहीं। इससे तुम यह न सबक़ लेना कि मैं संयम या साधना का विरोधी हूँ। ऐसा नहीं है। पर ज़बरदस्ती वासनाओं को दबाना उन्हें ज़ोरदार बनाने का ही एक ज़रिया हो जाता है। स्वाभाविक ढंग के जीवन की ही कृष्ण, बुद्ध, मुहम्मद आदि ने तथा इस समय के वास्तविक उच्च विचारकों ने भी प्रशंसा की है। और इसकी चाहे तुम निन्दा ही करो और निग्रह को ही प्रशंसात्मक समझो पर पाओगी तो इसे ही स्वाभाविक। इसी लिए मैं ललित को लिख रहा हूँ कि वह तुमसे अपना विवाह कर तुम्हारे जीवन को उस बृहत्तर साधना की ओर ले जाय जो तब बहुत स्वाभाविक हो जायगी। मुझे आशा है कि तुम मेरा आशय ठीक रूप से समझ सकोगी और ललितसेन से उस तरह का रूखा व्यवहार न करोगी, जैसा तुमने अपने अजीब दार्शनिक ढंग से मेरे साथ किया था। मैं ललित को भी इसी सम्बन्ध में पत्र लिख रहा हूँ।"

यह सब पढ़ते-पढ़ते सुधा विचलित-सी होकर उस कमरे में तेजी के साथ टहलने लगी। फिर अपने आप बोली—ये पुरुष लोग भी कैसे अद्भुत और रहस्यमय हैं! स्वयं ही संयम और साधना को महत्त्वपूर्ण कहते हैं और उसकी समाधि भी बनाते जाते हैं। अपने देश के गौरव का गान करते हैं

और विदेशी महिला के साथ, घर और देश को छोड़कर भागना शुरू कर देते हैं। यह बुद्धि और आत्मा की जड़ता है। भूखों मरनेवाली जनता की परवा न करके ये विलासी लोग अपने अत्यधिक साधनों से चाहे जो कर सकते हैं। इस दुःखद पराधीनता में इन्द्रियों की बेहद गुलामी ही स्वाभाविक जान पड़ती है—या वही प्रत्येक प्रकार के पतन का मूल कारण हो जाती है। सच्ची सार्वजनिक सेवा में संलग्न हो जाना ही मुझे इसकी वास्तविक दवा जान पड़ती है। मेरे लिए तो यही पथ है। मेरे सामने न तो चन्द्रसेन जी के आने की ज़रूरत है, न ललितसेन या और किसी सेन या सिंह के। मैं मनुष्यमात्र पर अपना प्रेम बरसा देना चाहती हूँ। तभी तो मैं अपने सुधा नाम को सार्थक कर सकती हूँ।

और उसे जान पड़ा कि चारों ओर एक नवीन प्रकाश छा गया—उसके शरीर के भीतर अणु-अणु में एक अद्भुत ज्योति चमक उठी। ऐसी शक्ति का ज्ञान, ऐसा आनन्द कल्पनातीत था।

१८

सुधा को अपने पिता के सहकारियों में से एक चालीस वर्षीय राजपूत प्रतापादित्य में पूरा विश्वास था। उसी को बुलाकर वह बोली—क्या आप मेरा एक काम कर सकेंगे? काम कठिन है, इसी लिए आपको कष्ट देना चाहती हूँ।

प्रतापादित्य ने गर्व से भरे हुए स्वर में कहा—कठिन काम की पूर्णता के लिए मेरा भरोसा करके आप मेरा गौरव बढ़ा रही हैं। मैं इस विश्वास के योग्य प्रमाणित होने के लिए अपनी ओर से कुछ उठा न रक्खूँगा। बताइए, कौन-सा काम है?

फिर भी सुधा कुछ देर तक चुपचाप सोचती रही। तब उसने कहा—मैं यही सोचती थी कि उसे कैसे प्रकट करूँ। मुझे स्वाभाविक संकोच है। किन्तु आपसे किसी तरह अपना मतलब कहना तो पड़ेगा ही। बात यह है कि श्री ललितसेन को उनके नये पिता ने उनकी नवीन प्रजा को यह समझाने के लिए भेजा है कि वे उन्हें साक्षात् भगवान् मानें। कृष्णकुमार नामक कोई नेता लोगों को यह सच्ची बात बता रहा है कि राजा का कर्त्तव्य लोगों का रंजन करना है। इसी लिए वह राजा कहलाता है। यदि वह अपने कामों से लोगों को संतोष न दे सके तो उन लोगों को यह जन्मसिद्ध अधिकार है कि वे उस राजा को अलग कर दें। इतना ही नहीं, यदि लोगों को ऐसा जान पड़े कि वे अपने चुने हुए चार-पाँच या अधिक लोगों के द्वारा राज-काज को कहीं ठीक तरह से चला सकते हैं और अन्यायों को हटा सकते

हैं, तो उन्हें अख्तियार है कि वे उस राजा को या तो पेन्शन दे दें या उसे अलग हट जाने को मजबूर कर दें। आपका काम यह होगा कि आप कृष्णकुमार को उनके ऐसे कार्यों में पूरी सहायता दें और ललितसेन उनके विरोध में जो कुछ भी करें उसे सर्वथा विफल कर दें।

प्रतापादित्य ने हँसकर कहा—मुझे केवल श्री ललितसेन जी और उनके पिता के विरुद्ध ही लड़ना होगा या अपने राजा के विरुद्ध भी ? मैं तो समझता हूँ कि यहाँ के राजा भी कृष्णकुमार की बातों से सहमत नहीं हो सकते। मैं भी ऐसी बातों को कुछ अज्ञान और आवेश से पूर्ण ही मानता हूँ।

सुधा ने धीमे स्वर में कहा—तो क्या आप मेरा काम न कर सकेंगे ?

प्रतापादित्य—यह तो मैं नहीं कहता। इस युग में सभी यह जान गये हैं या जानते जा रहे हैं कि असली नमक जो हम लोग खा रहे हैं, किसानों और मजदूरों का ही है। हमारे सच्चे अन्नदाता वे ही हैं। हमारा प्रधान कर्त्तव्य उन्हीं के प्रति है। इसलिए अगर आप मुझे उनकी सेवा करने का अमूल्य अवसर देना चाहती हैं तो उसे मैं अपने लिए विशेष सौभाग्यप्रद मानता हूँ। मैं केवल यह बतलाना चाहता था कि हमारे काम का विरोध यहाँ से भी होगा। मेरी शक्ति का आधार और उसकी तथा वर्तमान जनशक्ति की सीमायें आपसे छिपी तो हैं नहीं। मैं आज ही जाने को तैयार हूँ।

सुधा ने और भी धीमे स्वर में कहा—आप जाइए। केवल मुझे ही नहीं, यहाँ के सब लोगों को अपने साथ समझकर जाइए। पिता जी

की हार्दिक इच्छा आपके साथ रहेगी। ऊपरी विरोध हो सकता है। उससे आपके-से लोग भयभीत नहीं हो सकते। सम्भव हो तो कृष्णकुमार को किसी दिन यहाँ भी लिवा लाइएगा। किन्तु यह इस तरह कीजिएगा कि सब लोग जान न सकें।

प्रतापादित्य ने कहा—क्या आप उन्हें जानती हैं ?

सुधा हँसकर बोली—मैं उन्हें इतना ही जानती हूँ, जितना आपसे बतलाया है। श्री ललितसेन के पिता ने अपने पत्र में उनके बारे में विस्तृत रूप से लिखा है। उसी से मुझे यह सब मालूम हुआ है।

× × ×

इसके एक मास बाद।

रात्रि का समय था। छोटी-छोटी बूँदें पड़ रही थीं। एकाएक प्रतापादित्य ने सुधा के कमरे में आकर कहा—कृष्णकुमार जी आये हैं।

सुधा के मुख पर प्रसन्नता दिखाई दी। उसने कहा—वे कहाँ हैं ?

प्रतापादित्य के कुछ कहने से पहले ही सुधा ने फिर कहा—उन्हें उस कमरे में लिवा लाइए जिसमें मैंने आपसे इस काम के लिए पहले-पहल बातचीत की थी। उनके साथ केवल आप रहिएगा। दूसरा कोई नहीं। या मैं ही आपको बुला भेजूँगी।

थोड़ी देर बाद सुधा ने उस कमरे में जाकर प्रतापादित्य को बुलवा भेजा। वे कृष्णकुमार के साथ आये। कृष्णकुमार सत्ताईस-अट्ठाईस वर्ष का साँवला-सा युवक था। छरहरा बदन था, किन्तु शरीर बलिष्ठ जान पड़ता था। उसके मुख में विशेष आकर्षण था। उसकी नाक, उसकी आँखें, उसके दाँत और उसके ओंठ सब ऐसे सुन्दर थे कि यह निर्णय करना कठिन था कि किसके कारण एक साधारण व्यक्ति की दृष्टि उस ओर बार-बार

अवश्य जाती थी। सुधा को अपनी सुन्दरता का घमंड था। परन्तु कृष्ण-कुमार की ओर देखकर वह भौंचक-सी रह गई। उसका विचार था कि विना यथेष्ट गौर वर्ण के कोई सुन्दर नहीं हो सकता। वह इस बात पर हँसती थी कि कृष्णचन्द्र का रंग लोग साँवला समझते हैं। 'आर्यों का रंग साँवला' हो ही नहीं सकता, अतः यदि वे आर्य थे तो बलराम की भाँति गोरे थे और अगर आर्य न थे तो हमें उन्हें ऐसा श्रेष्ठ न मानना चाहिए। यही उसका तर्क था। किन्तु आज उसने देखा कि घनश्याम में विद्युत् की शोभा क्यों दिखाई देती है और यमुना ठीक ही सूर्य-सुता कही जाती है। उसके हृदय ने अपने आप मान लिया कि कृष्णचन्द्र गौर वर्णवाले 'आर्य' रहे हों या न रहे हों, पर वे श्रेष्ठ अवश्य रहे होंगे।

× × ×

जब वह कृष्णकुमार से बातें करके लौटी तब अपने उच्छ्वास-भरे हृदय के वेग को सँभालना उसके लिए कठिन हो रहा था। वह भीतर जाकर पलँग के मखमली गद्दे पर पड़ गई। वह गद्दा उसे शूल के समान जान पड़ा। वह उस पर से उठकर खड़ी हो गई और एक सादी चद्दर वहीं पर पड़ी हुई एक चटाई पर बिछाकर बैठ गई, किन्तु वह अपने आसुओं को रोक न सकी। वे मोती की भाँति झरने लगे!

"यही है कृष्णकुमार! ओह, मैंने क्या समझा था और वास्तविकता कैसी विचित्र है! मैंने क्या सुनना चाहा था और मुझे क्या सुनना पड़ा। अपने इस रूप को देखकर मैं ही विस्मित रह गई हूँ! तब कृष्णकुमार ने मुझे बहुत ही ठीक समझा हो तो उनका कौन दोष? सुना है, इला ने अपने अद्भुत रूप से उन राजकुमार को उतना अपने वश में नहीं किया था

जितना अपनी बुद्धि और विद्या के चामत्कारिक आकर्षण से। मेरी बुद्धि तो कुंठित है। हमें यहाँ जो विद्या मिलती है उसका उचित साहस और बुद्धि की स्वतन्त्रता से सम्बन्ध ही क्या है? एक तरह का जादू—हिप्नॉटिज्म करने का कैसा यन्त्र बनाया गया है—उसी का नाम है शिक्षा की उन्नत पद्धति! आज उसकी जैसी पोल मेरी आँखों के सामने खुल गई है वैसा ही दूसरे सैकड़ों लोगों के सामने हुआ होगा। किन्तु उससे क्या हो सकता है? नकटा होकर ईश्वर को देखने की बात कहे या न कहे, फिर यह नाक तो मिल नहीं सकती।" यही सब सोचते सोचते सुधा बहुत तक रोती रही।

१६

कृष्णकुमार ने कहा था---चाहे जैसी सार्वजनिक संस्था हो, उसमें एक कार्यकारिणी समिति आवश्यक होती है और एक ऐसा व्यक्ति भी, जो सबसे काम ले सके। जो लोग ऐसे समाज-निर्माण का स्वप्न देखा करते हैं जिस समाज में कोई 'आज्ञा' देनेवाला या 'शिक्षा' देनेवाला न रहे, उनकी बुद्धि के चमत्कार की चाहे जितनी प्रशंसा की जावे, किन्तु उस बुद्धि का व्यावहारिक क्षेत्र में कभी कोई स्थान नहीं हो सकता। बुद्धि और चरित्र-बल की समानतायें संसार में कभी नहीं हो सकतीं।

इसे सुनकर सुधा को धक्का-सा लगा। वह जिज्ञासु के भाव के साथ उनकी ओर देख उठी।

तब कृष्णकुमार ने और स्पष्टता के साथ कहा---बड़े लोग और साधारण लोग, उच्चपद और साधारण पद, श्रेष्ठ काम और साधारण काम सदैव अलग-अलग रहेंगे।

सुधा प्रश्न किये बिना न रह सकी---क्या उनके बीच वैसी ही अलंघ्य खाई होगी जैसी इस समय है?

कृष्णकुमार ने हँसकर उत्तर दिया---इनके बीच का पुल अलंघ्य कभी नहीं हुआ और न हो सकता है। हमेशा के लिए योग्यता और शक्ति का ठेका क्या कभी कोई ले सका है, या ले सकता है? फिर भी इनके बीच एक लम्बा और दुर्गम व्यवधान रहता है और उसे रहना ही चाहिए, जिससे व्यक्तियों के उचित साहस और योग्यता की परीक्षा अपने आप हो जावे।

सुधा ने कह दिया--क्या अर्थशास्त्र के आधुनिक सिद्धान्तों के अनुसार समाज की विषमता बहुत कुछ दूर नहीं की जा सकती ?

कृष्णकुमार--आर्थिक विषमता पूरी की पूरी हट नहीं सकती और अगर हट सके तो भी उससे सामाजिक विषमता कुछ ही दूर हो सकती है, न कि बहुत कुछ।

सुधा--यह क्यों ?

कृष्णकुमार ने वैसे ही आत्म-विश्वास के स्वर में कहा--पुराने पड़ गये हैं वे सिद्धान्त जिनके अनुसार लोग अन्यथा मान बैठे। आर्थिक जीवन ही सम्पूर्ण जीवन नहीं है। और अगर आधिपत्य का भाव हमारे जीवन का सबसे मूल भाव है तो क्या बिना प्रतियोगिता के भाव के यहाँ कोई काम सुचारु रूप से चल सकता है ?

सुधा कह उठी--यदि हममें सार्वजनिक सेवा-भाव हो--

बात काटकर कृष्णकुमार ने कहा--ओह, आप यह क्या कहती हैं ? कितनी व्यक्तिगत या सामूहिक महत्त्वाकांक्षा इस सेवा-भाव के पीछे ज़ोर मारती रहती है, यह आप कुछ न कुछ अवश्य जानती होंगी। मूर्ख या अर्द्ध-शिक्षित लोगों को, विशेषतः नवयुवकों को, फँसाने के लिए अनेक वाग्जालों की सृष्टि हो गई है। वे उसमें सहज ही फँस भी जाते हैं, किन्तु कभी न कभी यह सत्य उनके सामने भी आ ही जाता है कि वे किसके हाथ में यन्त्र की तरह खेलते रहे हैं! परन्तु मैं तो प्रतियोगिता की बात कह रहा था। फ़ुटबाल या क्रिकेट आदि के खेल में अगर दोनों दल मिल जावें तो कितने अधिक 'गोल' या 'रन' किये जा सकते हैं। किन्तु तब क्या उसमें कोई उत्साह होगा या कोई व्यावहारिकता

रह सकेगी ? क्या हमारा सारा जीवन भी ऐसा ही न हो जावेगा, अगर उसमें प्रतियोगिता का भाव न रहे ?

सुधा--तब तो प्रत्येक जाति और प्रत्येक देश का पूरी शक्ति लगाकर युद्ध करना ही आप उनके जीवन के लिए श्रेष्ठ समझते होंगे !

कृष्णकुमार ने एक बार सुधा की ओर देखा और कहा--अब आप मेरे साथ अन्याय कर रही हैं। मैंने यह तो नहीं कहा कि मैं किसी व्यक्तिगत या सामूहिक आधिपत्य का पक्षपाती हूँ। मैंने तो केवल इतना कहा है कि ऐसा आधिपत्य का भाव सर्वत्र व्यापक है; ईर्ष्या और द्वेष के बीज मनुष्य के मस्तिष्क में जन्म से ही रहते हैं। ज़र, ज़मीन, जन इन तीनों को ही लेकर नहीं बल्कि सड़ी से सड़ी वस्तु और तुच्छ से तुच्छ बात को लेकर हम निरन्तर लड़ा करते हैं, क्योंकि हम केवल इन तीन को ही नहीं चाहते, एक दूसरे पर अपना आधिपत्य भी चाहते हैं।

सुधा--तब तो आप निराशावादी हैं !

उसे आशा थी कि इस बार वे उसकी बात अवश्य मान लेंगे, क्योंकि उनकी बातों का अर्थ और कुछ हो ही नहीं सकता। पर उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ जब उसने कृष्णकुमार को कहते सुना--मैं निराशा-वादी कैसे हो सकता हूँ ? मैं तो सबसे अधिक आशावादी हूँ। बात यह है कि मैं उच्च मानवता के भाव के विकास, उसकी अनुभूति और उसके प्रचार से संसार में उचित मानव-प्रगति मानता हूँ। इसके लिए कठिन और वेगमयी विरोधी धाराओं का सामना करना पड़ेगा, जैसा कि अब तक लोगों को बराबर करना पड़ा है, किन्तु यह तो होना ही चाहिए। बिना इसके ठीक उत्साह ही कैसे रहेगा। हमें अपनी नीच वासनाओं को

हटाना होगा,—क्षमा, करुणा, दया, सरलता, शुद्धता, शान्ति के भाव मन में लाने होंगे और साधारण लोगों की उन्नति के लिए कुछ न कुछ काम बराबर करना होगा। बस, इसे ही मैं जीवन की उन्नति का मूलमन्त्र मानता हूँ। हममें-से थोड़े से भी लोग यदि इन्हें अपना सकें तो उचित आदर्श बना रहेगा।

सुधा को जान पड़ा कि एक अद्वितीय आलोक से वक्ता का मुखमंडल उद्भासित हो उठा। ऐसा आकर्षक आलोक उसने कभी कहीं न देखा था।

किन्तु इसके बाद ही कृष्णकुमार ने वह बात कही, जिससे उसे सबसे अधिक आश्चर्य हुआ।

उसने कहा—देखिए, आप जानती हैं, वह कौन-सा महान् भाव है जो किसी भी व्यक्ति को सबकी दृष्टि में प्रशंसनीय और श्रद्धा के योग्य बना देता है—आप जानती ही नहीं हैं, आपमें वही भाव ओत-प्रोत है, तभी तो आप चन्द्रसेन जी के भाई से तुरन्त, बिना किसी हिचकिचाहट या संकोच के, कह सकीं कि आपने चन्द्रसेन को अपना जीवन-साथी चुन लिया है और अब उनके सिवा और किसी की ओर उस दृष्टि से आप कभी नहीं देख सकतीं। सच जानिए, इस देश का गौरव आप-जैसी अद्भुत शक्तिशालिनी देवियों के द्वारा ही प्रकट होता आया है। आपके बुलाने पर आपके दर्शन की संभावना से मुझे कितनी प्रसन्नता हुई, यह मैं किसी तरह प्रकट नहीं कर सकता।

बस, फिर सुधा का वहाँ ठहरना कठिन हो गया।

उसने किसी तरह कहा—आप यह सब क्या कह गये ? आप कुछ नहीं जानते—आप—मैं तो बिलकुल अपदार्थ हूँ ! फिर दर्शन दीजिएगा।

इतना कहकर सुधा तेज़ी से भीतर चली गई ! कृष्णकुमार उसके इस ढंग से आश्चर्यान्वित और स्तम्भित-सा रह गया । अच्छा हुआ था कि वह खा-पी चुकने के बाद सुधा से मिलने गया था नहीं तो कदाचित् अपने को अकारण अपमानित हुआ मानकर फिर वह उस दिन ठीक तरह खा-पी भी न सकता !

२०

आधिपत्य के लिए भाई-भाई में तो कलह, संघर्ष और युद्ध होते ही रहते हैं। पिता और पुत्र तथा स्त्री और पति के ऐसे विरोधी सम्बन्धों से भी प्रत्येक देश के इतिहास के अनेक पृष्ठ भरे हुए हैं। यह संभव है कि स्वाधीन देश उन्हें वही महत्त्वहीन स्थान अपने यहाँ की पुस्तकों में दें, जो वस्तुतः उन्हें पाना चाहिए, फिर भी वास्तविकता के क्षेत्र में उनका जो भाग रह चुका है और अब भी रहता है, उससे सर्वथा इनकार तो कोई भी नहीं कर सकता।

किन्तु सभी व्यक्तियों की महत्त्वाकांक्षा एक सी नहीं होती। अधिकांश लोग ऐसे होते हैं कि यदि उन्हें दो-चार व्यतियों पर भी शासन करने को मिल जावे तो फिर उन्हें राजा या महाराजा आदि किसी से रत्ती भर भी ईर्ष्या न होगी। वे उन्हीं को लेकर अपने जीवन को खूब मज़े में काट सकते हैं और काटा करते हैं। इनमें दूसरों का अपमान करने और 'हाँ-हुजूर' सुनने के ऐसे अभिलाषी भी होते हैं कि अगर इन कामों के लिए दो व्यक्ति भी उन्हें मिल जावें तो वे शेष संसार को कुशलपूर्वक छोड़ सकते हैं। पर कुछ लोग इतने ही से संतुष्ट नहीं होते। उनकी आधिपत्य की, दूसरों को नीचा दिखाने की और दूसरों पर तरह तरह से अपना रोब जमाने की असीम आकुलता होती है! चन्द्रगढ़ के महाराज की भी गिनती ऐसे ही लोगों में की जा सकती है। वे शिवपुर के महाराज को अपमानित करने के लिए ही अपने 'दत्तक पुत्र' का विवाह उनकी पुत्री के साथ करना चाहते थे और इसके लिए जितने भी प्रभाव डाले जा सकते थे, डाल रहे

थे। शिवपुर के महाराज के तीन रानियाँ थीं। बड़ी रानी के एक पाँच वर्ष का बालक था। उनके और कोई सन्तान न थी। शेष दो में से किसी के पुत्र नहीं हुआ था। छोटी रानी की पुत्री सुधा थी। उसका सुधा के समान ही सब प्यार और सम्मान करते थे। किन्तु जब शिवपुर के महाराज ने प्रतापादित्य की बात मानकर कृष्णकुमार को अपने यहाँ लाने की अनुमति दे दी, तब उनके इस कार्य में सुधा के प्रति उनका जो स्वाभाविक स्नेह था, उसका उतना भाग न था, जितना उस आधिपत्य के भाव का, जो उन्हें चन्द्रगढ़ के पत्र में स्पष्ट दिखाई दिया था, तुच्छ प्रमाणित कर देने की इच्छा की प्रबलता का था। प्रतापादित्य ने इसी भाव से यथेष्ट लाभ उठाना ठीक समझा। उन्होंने प्रभाकरदेव की तुच्छता दिखाकर अपने राजा को खूब प्रसन्न किया।

और तो और, कृष्णकुमार को अपने पास बुलाकर राजा साहब ने उससे कुछ ऐसी बातें कहीं, जिनकी उनसे सुनने की उसे कभी आशा न थी। वह उन बातों को सुनकर उन्हें ऐसा देशभक्त और इतना दूरदर्शी समझने लगा जितने कि वे न कभी थे, न होना चाहते थे। दल-बन्दी की बुराइयों और उसके कुप्रभावों को कृष्णकुमार खूब जानता था, फिर भी उसने यह एक बार भी नहीं सोचा कि उसने यहाँ जो कुछ सुना और देखा है, उसमें भी कोई ऐसा ही तत्त्व मौजूद था और अगर वह न होता तो उसे यहाँ आने तक की आज्ञा न मिल सकती।

चन्द्रगढ़ के महाराज को जब यह मालूम हुआ कि कृष्णकुमार शिवपुर गया था और वहाँ राजकुमारी सुधा से भी उसकी बातचीत हुई थी, तब उनके सारे बदन में आग-सी लग गई।

उधर ललित से भी यह सब छिपा न रहा। सुनकर वह भी विस्मित

हो गया ! जिस सुधा ने उससे स्पष्ट शब्दों में कहा था कि उसका विवाह चन्द्रसेन के साथ हो गया है, उसी की कृष्णकुमार से भेंट !....जरूर वह मुझसे इसी लिए चिढ़ गई थी कि मैं भी इसके लिए तैयार हो गया कि चन्द्रगढ़ के महाराज मुझे ले लें। इसी बात को लेकर ही तो वह मुझसे सबसे अधिक रुष्टता और कठोरता प्रकट कर सकी थी ! बर्बरता, उसे सचमुच बर्बरता का ढंग ही कहना चाहिए। यदि वह ऐसी तेज और धृष्ट न होती तो सोने में सुगन्धि देखने को मिलती। नम्रता और विनय को, जो स्त्रियों के सबसे बहुमूल्य आभूषण हैं, वह अपने पास फटकने नहीं देती ! किन्तु यह तो मानना ही होगा कि उसकी इस तेजस्विता में भी एक अद्‌भुत आकर्षण है ! यदि उसके साथ मेरा विवाह किसी तरह हो जावे तो वह अत्यन्त लज्जाशील और बेहद सीधी होकर रह सकेगी, इसमें कोई सन्देह की बात नहीं है ! किन्तु यह कैसी अड़चन आ रही है ! अब तो अच्छा यही है कि मैं इसी बात पर डटा रहूँ कि उसका मेरे भाई के साथ विवाह होना चाहिए न कि मेरे साथ !

और कृष्णकुमार से मिलने पर उसने देखा कि वह इस विषय में उससे सहमत है।

धीरे-धीरे ललितसेन ने यह भी देखा कि वह भी कृष्णकुमार के अनेक मतों को पहले से ही अपना चुका है। उसने कृष्णकुमार की भयानक कट्टरता और हानिकारक संकीर्णता के बारे में बहुत-कुछ सुना था, पर उनका उसमें नामोनिशान न था। उसकी उदारता उसे 'अत्यधिक' जान पड़ी और उसकी संकीर्णता—अगर उसे संकीर्णता कहा जा सके—विशेष लाभदायक ! वह कृष्णकुमार का प्रशंसक बन गया !

और उन दोनों ने मिलकर राजकुमारी सुधा के भविष्य के बारे में जो अद्‌भुत बात सोची, वह उन दोनों के सिवा और कोई किसी तरह न सोच सकता था !

इसके बाद जब ललित की भेंट चन्द्रगढ़ के महाराज से हुई उसके पहले ही शिवपुर से पत्र आ चुका था। उसमें लिखा था--राजकुमारी की तबीअत अभी ठीक नहीं है। उनकी दवा हो रही है। लेडी डाक्टरों का कहना है कि कम से कम छः मास तक उनका विवाह करना ठीक न होगा। आशा है, आप भी यही चाहेंगे कि सबसे पहले उनका शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य ठीक हो जावे, तब कोई दूसरा काम करना उचित होगा। राजकुमार चन्द्रसेन के इला के साथ इस तरह भाग जाने से उनके मन पर जो ज़ोर का धक्का लगा था, उसका प्रभाव अब भी ज्यों का त्यों बना हुआ है। ऐसी दशा में उनको विवाह के लिए लाचार करना अन्याय होगा। ऐसा हममें से कोई क्यों करना चाहेगा ? आपके पत्र में जिस ओर उनका विशेष झुकाव हो जाने को लिखा है, वह भी इस घात का प्रतिघात समझा जा सकता है। एक ओर से वह प्रेम न पाने पर, जिस प्रेम को पा जाने की आशा करना ही स्वाभाविक था, अब यदि जनतामात्र की ओर से श्रद्धा पाने के प्रयत्न में वे लगना चाहें, तो यह भी वैसा ही स्वाभाविक है। इसमें बाधा डालना तो और भी घातक होगा !........

इस पत्र ने चन्द्रगढ़-महाराज की क्रोधाग्नि में आहुति ही डाली, किन्तु कहना न होगा कि अब इससे ललित को सच्ची प्रसन्नता हुई !

२१

राजकुमारी सुधा ने चन्द्रसेन का एक पत्र और पाया। इसमें अपनी यात्रा का कुछ वर्णन करने के बाद चन्द्रसेन ने लिखा था--

"मेरे मन की अवस्था ऐसी विचित्र हो रही है कि उसे समझ सकना मेरे लिए तो असम्भव-सा हो गया है। मैं राजकुल में उत्पन्न हुआ। वह कुल, कितने ही लोगों की समझ के अनुसार, ईश्वर का विशेष कृपापात्र या अपने पूर्वजन्मों के कृत्यों में विशेष पुण्यवान् होता है। मुझे मालूम है और मैं जानता हूँ कि तुम्हें भी मालूम है कि ऐसा दावा अगर सचमुच किया जावे तो वह कितना खोखला होगा, क्योंकि अगर यह कुल इन दोनों में से कुछ भी होता तो हम लोगों को कितने अधिक सात्विक स्वभाववाले एवं संयमी होना था। ईश्वर का कृपापात्र या पूर्वजन्म का पुण्यवान् यदि संयमशील न हो, अपनी उत्तप्त वासनाओं को वश में न कर सके, तो उस कृपा और उस पुण्य को धिक्कार के योग्य ही मानना पड़ेगा। फिर मैं और मेरे ऐसे अनेक बन्धु—उन्हीं की संख्या तो अधिकांश दिखाई देती है—राजकुल में क्यों हो रहे हैं? लाचार, भौतिकवादियों का उत्तर मानने के लिए, मन मचलता है। मुझे तो इसमें कुछ विवशता न जान पड़ती किन्तु बहुत प्रसन्नता होती, किन्तु—इस किन्तु के लिए ही मुझे हार्दिक दुःख है--इस शरीर के भीतर का एक-एक अंग मुझे इस समय ऐसे भौतिकवाद के विरुद्ध चिढ़ा रहा है!

वैभव में उत्पन्न होकर विलासप्रियता को चरितार्थ करने में कोई कोर-

कसर रखना, मैंने कायरों और अपाहिज़ों के लिए ही संभव समझा था और इस अद्भुत वैज्ञानिक युग में किसी प्रकार शक्तिहीन हो सकने की बात मूर्खों की कल्पना ही मान ली थी, किन्तु सहसा—या उसे धीरे-धीरे भी कहा जा सकता है—जो कुछ मेरे साथ हो गया है, उसे देखकर मैं हैरान और परेशान हूँ। अगर और कोई—चाहे वह जो भी होता, ऐसा अनुभव मुझ पर प्रकट करता तो मैं उसे अर्धविक्षिप्त से कम न समझता और उसकी खूब हँसी उड़ाने से कदापि न रुकता। मुझे भय है कि जब मैं ऐसा कर सकता था तो कहीं तुम भी ऐसा न करना चाहो ! किन्तु मैं यह भी जानता हूँ कि मुझमें और तुममें कितना महान् अन्तर है।

मैं उच्छृङ्खलता के—असंयन के—जिस ढालू पथ का पथिक बना था, 'प्रकृति' ने अपनी पूरी विकरालता के साथ, उसकी सबसे नीची सीढ़ी मुझे दिखला दी है और मेरी अहंमन्यता की, शक्ति के झूठे घमंड की, नितान्त पोल खोल दी है ! मैं तुम्हें कैसे बतलाऊँ कि मैं किस पश्चात्ताप की अग्नि में जल रहा हूँ ? उसकी लपटें कैसी भयानक हैं और वे चीत्कार और धिक्कार की आवाजें, जो मुझे सुनाई देने लगी हैं, कैसी वज्रवत् कठोर तथा प्रलयंकरी हैं। क्या मानव-शरीर में ऐसा होना भी कोई भौतिक वैज्ञानिक संभव समझ सकता है ? नहीं, ऐसा करना तो उसके मूलसिद्धान्त का ही विरोधी बनना होगा ! वह यदि यहाँ ऐसी नैतिक लहरें मान ले तब तो उसके रंगमहल का आधार ही विलुप्त हो जावेगा !

तुम मेरी बातों का विश्वास कर लोगी। एक बार तुमने इस ओर संकेत भी किया था। पर मैं अपने नशे में था। 'कोकिल की बोली' और

'मधुपों की टोली' सुनने और देखने के सिवा मैं और कुछ समझ ही कैसे सकता था ? ऐसे युवक कवि-वृन्द मेरे आस-पास जुट गये थे जो 'सुमुखि' और 'सजनी' को छोड़कर अन्य प्रकार के आलाप को केवल प्रलाप कहते थे और 'वीरता', कला तथा 'मानव-जीवन' की स्वनिर्मित परिभाषायें सुनाने में पटु थे ! मेरे पास न तो धन की कमी थी, न सुन्दरता की, न साहसी बन्धुओं की ! फलतः मैं उस पथ पर सरपट दौड़ता गया। वे सब उसको पतन का मार्ग न कहकर परम पुरुषार्थ और रसिकता का स्वाभाविक साधन कहते थे। पर अब ?

जब तक शराबी तरह-तरह के रोगों से जर्जर होकर चारपाई पर नहीं पड़ जाता, तब तक वह अपने उन शुभचिन्तकों की, जो उसे नशे से दूर रहने का उपदेश देते हैं, मनमानी हँसी उड़ाता है और उन्हें उन लोगों के वृत्तान्त सुनाया करता है जो जन्म भर 'पियक्कड़' रहे और 'वैसे ही बुद्धिमान् तथा शक्तिशाली भी बने रहे। जब वह स्वयं रोग का शिकार हो जाता है, तब उसे भीषण आश्चर्य होता है और तभी उसका भ्रम धीरे-धीरे दूर होता है। मेरी भी यही दुर्दशा हुई है ! अन्तर इतना ही है कि उनमें से अनेक फिर भी अपनी भूल स्वीकार नहीं करते और मैं ऐसा किये बिना रह ही नहीं सकता हूँ—हाँ, रह ही नहीं सकता हूँ !

मैं कहाँ जा रहा हूँ ? क्यों जा रहा हूँ ? इन प्रश्नों का उत्तर कैसा दग्धकारी है ! मेरे देश के पुराने ढंग के अनेक धार्मिक लोग तो जाति-पाँति, छुआ-छूत और खान-पान के ऐसे संकीर्ण 'नियमों' को मानते हैं कि वे अपने पिंजड़े से बाहर निकलते ही छुई-मुई की भाँति अपने धर्म की चेतना खो देने की सम्भावना

मानते हैं। कूप-मण्डूक बने रहने में ही वे अपना कल्याण समझे बैठे हैं और नये ढंग के लोगों में से अनेक लोग नैतिकता की जड़ पर ही कुठार चला देना विज्ञान और बुद्धि के अनुकूल समझते हैं! वे खान-पान और जाति-पाँति में ही नहीं वरन् स्त्री-पुरुष के संयम और सदाचार में भी अंधविश्वास और अवैज्ञानिकता देखते हैं! उनकी 'स्वाभाविकता' की परिभाषा पशुओं की स्वाभाविकता को लज्जित करनेवाली हो गई है! अवश्य ही यह सब कूड़ा-करकट समय के बहाव में ठहरनेवाला नहीं, किन्तु इससे जो हानियाँ हो सकती हैं, वे तो हो ही रही हैं। स्थायी—स्थायी होता ही क्या है?

"क्या तुम इस पत्र का उत्तर देना चाहोगी? न जाने क्यों, मुझे जान पड़ता है कि तुम्हारे हाथ की लिखी हुई दो पंक्तियाँ भी मेरी सारी अशान्ति दूर कर देंगी, मुझमें नवीन स्फूर्ति का संचार करने में समर्थ होंगी। क्या तुम ऐसा न करना चाहोगी?

"भूल किससे नहीं होती? मनुष्य भूल न करे, यह हो ही नहीं सकता! किन्तु जो अपनी बार-बार की भूल से भी कुछ पाठ नहीं पढ़ता, उसी को कठिन दुर्भाग्य का सामना करना पड़ता है। यदि तुम मुझे क्षमा कर सको, तो मेरे अनुताप की यह असह्य मात्रा अवश्य कम हो जावेगी। बस।"

सुधा ने इस पत्र को कई बार पढ़ा—जितनी बार पढ़ा, नया रस प्राप्त किया। इससे उसने अपने आपको भी और गहराई से पहचाना।

अन्त में उसने एक बार प्रतापादित्य को फिर बुलाया और कहा—यह पत्र लेकर आप श्री कृष्णकुमार के पास जाइए और उनसे कहिए कि इसके लेखक के बारे में वे जो कुछ भी पता लगा सकें, लगाने की कृपा करें—

इनके यहाँ के जीवन के सम्बन्ध में और वर्तमान जीवन के सम्बन्ध में भी। इसमें जो खर्च पड़ेगा, मैं देने को तैयार हूँ। आपसे वे जो सहायता चाहें वह आप भी उन्हें जरूर दीजिएगा।

प्रतापादित्य ने कहा--इसे आप क्यों कह रही हैं, यह तो मेरा परम कर्त्तव्य होगा। जब आप राजकुमार चन्द्रसेन के बारे में फिर से सब बातें जानना चाहती हैं तब हम लोग इसके लिए पूर्ण कोशिश क्यों न करेंगे?

सुधा--नहीं, मैं यह नहीं चाहती कि इस बात को लेकर एक हंगामा खड़ा कर दिया जाय या व्यर्थ का तूमार बाँधा जाय। ठीक तरह से आप और कृष्णकुमार जी सब बातों का पता लगाइएगा। अगर आप लोग जरूरत समझें तो राजकुमार ललितसेन से भी मदद ले सकते हैं। मैं जानती हूँ कि इससे उन्हें हर्ष ही होगा।

प्रतापादित्य--हाँ, उन्हें जरूर खुशी होगी। मैंने तो सुना है कि उनकी कृष्णकुमार से जो मित्रता हो गई है, उससे महाराज प्रभाकरदेव उनसे बहुत ही चिढ़ गये थे, पर उन्होंने यह कहकर उन्हें मना लिया कि वे कृष्णकुमार को राजनैतिक जाल में फँसा रहे हैं।

सुधा--और अगर वे सचमुच ऐसा करना चाहते हों तो?

प्रतापादित्य--उनके जैसे यदि दो-चार कुमार मिल जावें तो भी वे कृष्णकुमार को किसी जाल में नहीं फँसा सकते।

सुधा मन ही मन हँसकर चुप रही। स्वयं उसका भी तो ऐसा ही विश्वास था।

२२

महाराज प्रभाकरदेव ने जो ज़माना देखा था, वह कई दृढ़ संस्कार उनके मन पर अङ्कित कर चुका था। जो भयानक उथल-पुथल की लहरें उनके सामने उठ रही थीं वे उन्हें हटाने में असमर्थ हो रहे थे। उन्हें विश्वास था कि इस देश का सत्ययुग लाखों वर्ष हुए व्यतीत हो गया। अब घोर कलियुग है। अभी लाखों साल तक फिर सत्ययुग आ नहीं सकता। इस 'युग-धर्म के अनुसार' का अर्थ कलियुग की ही करतूत है। शूद्रों का राज्य संसार भर में हो जावेगा, यह पुराणों की भविष्य-वाणी है। इसके स्पष्ट चिह्न उन्हें दिखाई देते थे। वे कहते थे, शूद्रों का राज्य अर्थात् ऐसा राज्य जिसमें बुद्धि, विवेक और नीति का स्थान केवल पशु-बल, जिसका दूसरा नाम युद्ध-बल भी है, ले लेवे और ब्राह्मण-प्रणाली, क्षत्रिय-प्रणाली तथा वैश्य-प्रणाली को नष्ट कर एकमात्र अपना ढंग सर्वत्र स्थापित कर दे! उनका यह भी विश्वास था कि संसार के आदि में ईश्वर ने ऋषियों को शुद्ध बुद्धि देकर उत्पन्न किया था, वे ऋषि मानसिक सृष्टि करने में समर्थ थे। जब समाज के फैलने से राजा की ज़रूरत हुई तब पंचायत से ही वह चुना गया था। हिन्दुस्तान में ही सबसे पहले ऐसा हुआ था। इसलिए संसार भर को पंचायत-प्रथा तथा राजा का चुनाव सिखानेवाला यही देश है। यहाँ राजा कभी निरंकुश नहीं हो सकता था। स्मृतियों के नियमों के अनुसार उसे चलना पड़ता था। ये स्मृतियाँ स्थान और काल के अनुसार साधु-चरित्र विद्वानों-द्वारा बदली जाती थीं। जब इस्लाम-धर्म माननेवाले शासकों का राज-काज में विशेष आधिपत्य रहा तब भी क़ाज़ी कभी धनी-वर्ग का न होता था। जिस तरह यहाँ समाज में त्याग का सबसे अधिक सम्मान था वैसे ही खलीफ़ाओं में भी उसकी ज़रूरत मानी गई थी। हाँ, उनके यहाँ खलीफ़ा ही राजा भी होता था! इस तरह

जो व्यवस्थापकशक्ति और प्रबन्धशक्ति हमारे देश में अलग-अलग थीं और कहीं सुचारु-रूप से अपना काम चलाती थीं, वे वहाँ अव्यवस्थित हो गईं। फिर योरप-अमेरिका की व्यवसाय-शक्ति ने जोर लगाकर इन दोनों शक्तियों को अपने वश में कर लेना चाहा। धीरे-धीरे शूद्र-शक्ति--अर्थात् हृदय और बुद्धि से हीन यह यंत्र-शक्ति बलवान् हो उठी। तरह तरह के यंत्रों के आविष्कार से हमने समझा कि हम लोग उन्नति कर रहे हैं, पर वस्तुतः हम अपने आपको भयानक जालों में फँसाते गये और अब उनमें से निकलने की शक्ति या बुद्धि हमारे पास शेष नहीं है। यही है कलियुग की विशेषता। यंत्रों के मोह में फँसकर हम सब शूद्र बने बिना रह नहीं सकते अब!

अपनी समझ की ऐसी विशेषता माननेवाले महाराज अपना राज-काज किस प्रकार चलाना चाहते थे, यह कहने की ज़रूरत नहीं। उनके प्रशंसकों और समर्थकों की कमी नहीं थी पर ललितसेन उनकी इन सम्मतियों में से किसी को मानने को तैयार न थे। वे विकासवादी थे। पहले सत्ययुग मानने को वे अज्ञान की पराकाष्ठा कहते थे। इस समय भी वे किसी सत्ययुग के होने या उसके शीघ्र आगमन की कल्पना करनेवालों में न थे। वे वैसे सत्ययुग को सम्भव भी न समझते थे, जिसमें बाघ और बकरी साथ-साथ एक घाट पर पानी पिया करें! ऐसी सब बातों को वे ढोंगियों की बहकाने-वाली मूर्खता से उत्पन्न मानते थे। समाज-सुधार और संसार में आवश्यक क्रान्ति करने के वे विरोधी न थे और अब कृष्णकुमार से घनिष्ठता बढ़ जाने पर उसके समर्थक ही कहे जा सकते थे। अतः इन नये पिता-पुत्र का भीष्म-संघर्ष अनिवार्य होता जाता था।

राजकुमारी सुधा के उस काम ने, जिसे उसने प्रतापादित्य के द्वारा कृष्णकुमार को सौंपा था, ललित को भी उसी ओर लगा दिया। कृष्णकुमार के लिए यह सम्भव था भी नहीं कि वे बिना इनकी पूरी सहायता के उस काम को करने में कुछ सफलता पा सकते।

इन दोनों, बल्कि तीनों ने---क्योंकि प्रतापादित्य को भी बीच-बीच में काफ़ी काम करना पड़ा---ऐसी कोशिश की कि न केवल राजकुमार चन्द्रसेन का बल्कि इला का भी, इस देश में आने के बाद से लेकर आज तक का, सब वृत्तान्त विस्तार के साथ इन्होंने जान लिया और उसे लिख डाला। इसमें उन्हें बहुत कठिनाई भी नहीं हुई, क्योंकि जिन 'मित्रों' ने उस समय चन्द्रसेन का साथ दिया था, उन्हीं में से अधिकांश ने इस समय उनके 'रहस्यों' का विश्लेषण करने और उनके विरुद्ध प्रचुर प्रमाण इकट्ठे करने में इनका साथ दिया। उनमें से प्रत्येक ने अपने को 'सर्वथा निर्दोष' भी प्रमाणित करना चाहा, किन्तु इन्हें इसकी कुछ आवश्यकता न थी! सबसे मनोरंजक बात इन्हें यह मालूम हुई कि इला ने देवी का रूप धारण करके अनेक शिक्षित भक्तों को खूब ठगा था। इन भक्तों में से कुछ को पूरा विश्वास हो गया था कि इला साक्षात् लक्ष्मी, काली या आदि-शक्ति का अवतार है और कुछ यह अच्छी तरह जानते थे कि यह एक तमाशा हो रहा है, फिर भी दोनों प्रकार के लोग ठगे जाने से बच नहीं सके। उसी समय राजकुमार चन्द्रसेन की भी इला से पहले-पहल भेंट हुई। राजकुमार को देखते ही इला उन पर इस प्रकार मोहित हुई कि वह शीघ्र ही देवीपन छोड़कर पूर्णतः मानवी हो गई और फिर धीरे-धीरे उन्हें लेकर उस पद से भी पतित होने को तैयार होती गई। तब कुछ लोगों ने कहा कि इस तैयारी के लिए ही उसने अपने देवीपन का क़िला बनाया था और अब अपने उद्देश्य में सफल होने से उसने उस मायावी क़िले को तोड़-फोड़कर अलग कर दिया। इस क्षेत्र में चन्द्रसेन ने यही अपनी सबसे बड़ी विजय समझी। इसके बाद और विजय की आवश्यकता ही क्या रह गई थी? जब स्वयं देवी ने उन्हें अपना लिया और उनकी ओर आकर्षित हुए बिना न रह सकी, तो फिर शेष क्या रह गया?

वे कैसे जानते कि साधारण मानव प्राणी एक साधारण स्त्री के साधारण प्रेम को लेकर ही इस कठिन संसार में ठीक तरह

चल नहीं पाते तब एक 'देवी' के असाधारण आकर्षण को साधारण मान लेना उनके लिए कितनी बड़ी भ्रामक बात थी! भ्रम में फँसते समय अगर कोई उसे 'भ्रम' जान ले तो फिर वह फँसे ही क्यों? किन्तु नहीं, कितने ही लोग जानते-बूझते भी फँसते जाते हैं। क्या यह सम्भव है कि चन्द्रसेन इस प्रकार के व्यक्तियों में रहे हों ?

इन प्रश्नों पर कृष्णकुमार और ललितसेन में मत-भेद था। किन्तु वे दोनों इसके लिए प्रयत्नशील हो चुके थे कि इला से चन्द्रसेन की रक्षा की जावे, रक्षा!

इस बार स्वयं सुधा को एक पत्र चन्द्रसेन के लिए लिखना पड़ा, जिसमें मुख्य बातें ये थीं—

"जो लोग पश्चातापवादी हैं, उनसे मैं सहमत नहीं हूँ। भूलों की—या 'पापों' की—याद कर-करके रोना मैं मानव-प्राणी के लिए सबसे दयनीय और हानिकारक बात मानती हूँ। इन पश्चात्तापवादियों से कहीं अधिक साहसप्रद सिद्धान्त उन लोगों का है, जो अपने से कर्तव्य-भावना को सर्वथा हटा देना चाहते हैं। वही मुझे उचित भी जान पड़ता है। मनुष्य के अज्ञान और असंयम-आदि दुर्गुण भी अहंकार के ही रूप हैं। अगर आप कर्त्तव्य के अहंकार को अपने मन से दूर कर दें और भविष्य में शुद्धि का साथ न छोड़ें तो आपको अपने आप सच्ची शान्ति मिल जावेगी।

"किन्तु अन्तिम बात मैं तब तक सम्भव नहीं मान सकती जब तक आप इला का साथ न छोड़ देंगे। यहाँ अब तक पता लगाने पर उनके छद्म-वेशों के बारे में जो जो बातें मालूम हुई हैं, वे ही इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए काफ़ी हैं। पश्चिमी विज्ञान से भौतिक शक्ति को अत्यधिक उत्तेजना मिली है, किन्तु यह उत्तेजना किसी के लिए सुखप्रद नहीं हो सकती—इससे ईर्ष्या और द्वेष की बाढ़ आगई है। जब हम मस्तिष्क की कोमल वृत्तियों और हृदय की सहानुभूति का ठीक तरह उपयोग नहीं कर पाते,

तब दिल और दिमाग़ दोनों की दिवालिया अवस्था समझनी चाहिए। विज्ञान का क्षेत्र इतना बढ़ गया है कि उसके एक-एक अंग को लेकर ही लोग अपना सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकते हैं और फिर भी बहुत थोड़े नये अनुसंधान करने में समर्थ हो सकते हैं। किन्तु अपने इस एक क्षेत्र को ही वे जब सब कुछ समझ लेते हैं और सम्पूर्ण सत्य को उसी दृष्टि से ग्रहण करना चाहते हैं तब विडम्बना अनिवार्य हो जाती है। इस समय यही हो रहा है। सब अपने-अपने क्षेत्रों को सर्वोपरि सिद्ध करना चाहते हैं और उसी को एक-मात्र सत्य मानकर कार्यशील हो रहे हैं। ऐसी अवस्था में कौन उनकी रक्षा कर सकता है ?

"सभी चक्कर में फँस रहे हैं। आप भी उसमें विशेषरूप से फँस गये तो ऐसी कौन-सी आश्चर्य की बात हुई ? यह तो एक प्रकार से अच्छा ही हुआ कि इतनी जल्दी आपने उस सत्य को जान लिया, जिसे कितने ही लोग जीवन के अन्त तक नहीं जान पाते और अगर वे उसका कुछ क्षीण प्रकाश देख पाते हैं तो भी उसे इस तरह निष्कपट और खुले भाव से स्वीकार नहीं करते। क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि ऐसे प्रकाश को देखने पर भी उसको स्वीकार करनेवालों की संख्या इतनी इनी-गिनी हो !

"पहले पत्र में आपने मुझे अपने भाई ललित के साथ विवाह कर लेने को लिखा था। शायद आपको जाटों की या तिब्बत आदि की प्रथा की याद आई होगी, या सम्भव है महाभारत-काल के (द्रौपदी के) विवाह का ख्याल रहा हो। किन्तु अब इस युग में मुझसे ऐसा कहना आपके लिए किसी तरह शोभाप्रद न था। मैं ऐसा कभी नहीं कर सकती, यह लिखने की तो जरूरत ही नहीं।"

पत्र में नीचे केवल 'सुधा' लिखा था। ऊपर भी 'वन्दे' लिखकर पत्र प्रारम्भ कर दिया गया था। फिर भी उसमें जो कुछ लिखा गया था वह इस समय के चन्द्रसेन के अन्तस्तल को हिला देने के लिए काफ़ी था।

किन्तु केवल चन्द्रसेन में ही ऐसा गहरा भाव उससे उत्पन्न हो, ऐसा ही न था। उस पत्र की लेखिका में भी जिन भावों की उत्पत्ति हुई थी वे भाव क्षणिक न थे, वे उसके जीवन के सर्वस्व हो रहे थे। चन्द्रसेन को प्राप्त करके ही वह अपने जीवन को सम्पूर्ण और यथार्थ बना सकती है, इसमें अब उसे कुछ भी सन्देह न था। और उसे जान पड़ता था कि इसमें उसे कभी तनिक भी सन्देह न हुआ था।

यहीं से उन दोनों के जीवन का फिर एक नया अध्याय प्रारम्भ हुआ।

२३

जहाज अब भी ज्यों का त्यों चला जा रहा था, पर उसमें यात्रा करने-वाले कई व्यक्तियों के जीवन का क्रम बदल गया था। कोगाको ने अपने इटली के साथी से वह कहानी पूरी सुन ली थी और तब समझ लिया था कि उसका संदेह निराधार न था। यह कहानी केवल कहानी न थी, इसकी नायिका रोज़ी इस समय इला नाम से उसी जहाज पर चली जा रही थीं। जिस दिन वे गायब हुई थीं, उसी दिन से उस अँगरेज़ का भी पता नहीं लगा। पहले वहाँ से किसने प्रस्थान किया, यह पता न चला। पर उस इटैलियन का ऐसा ख़्याल था कि वह अँगरेज अब भी इटली में बन्दी अवस्था में है और उसे ऐसे गुप्त रूप से रक्खा गया है कि बाहरवालों को उसके बारे में किसी तरह कुछ समाचार नहीं मिल सकता। अगर रोज़ी या इला किसी तरह इटली की जमीन में पहुँच जावे तो इसे पकड़ कर उस मामले को आगे चलाया जा सकता है और तब संभव है कि उस अँगरेज को भी बाहर लाया जाय।

कोगाको ने ये सब बातें चन्द्रसेन को बतलाना अपना कर्त्तव्य समझा और अन्त में बतला भी दिया। पर उसने देखा कि उन पर वैसा अधिक प्रभाव न पड़ा, जैसा उसने सोचा था। उन्होंने केवल इतना कहा—वह कैसी ही हो, उसने मेरे साथ कभी कोई बुराई नहीं की। मैं अपनी इच्छा से उसको लेकर इस जहाज पर आया हूँ। जब इटली जाना उसके लिए भयप्रद है तो मैं, उसकी इच्छा हो तो भी, वहाँ न जाऊँगा।

किन्तु कोगाको के लिए इटली जाना ज़रूरी हो गया था। उसके देश के उस विभाग के अधिकारियों का, जिसमें वह काम कर रहा था, उसके लिए यह स्पष्ट आदेश आ चुका था। फलतः वह चिन्तित हो गया।

और चन्द्रसेन की चिन्ता अपने आप कम होती गई। जिस दिन उन्हें राजकुमारी सुधा का पत्र मिला, उस दिन के दो दिनों पहले उनका मन बहुत कुछ शान्त हो चुका था।

इसका एक विशेष कारण यह था कि पहले वे अपने को ही असाधारण पतित मानकर बेहद व्यथित और पीड़ित हो उठे थे। पर कोगाको से राज-नैतिक षड्यन्त्रों में हत्याओं पर हत्यायें और सैकड़ों हत्याएँ होने की कथाएँ सुन-सुनकर उनका वह भाव बहुत कुछ दूर हो गया। उन्हें अपने भ्रम पर हँसी भी आने लगी और इला के प्रति उन्हें अपने हृदय के एक अज्ञात कोने में एक नये ही प्रकार की सहानुभूति दिखाई दी।

अब उन्हें खेद इस बात पर था कि इला ने उन्हें कभी इतना विश्वसनीय नहीं समझा कि वह उन्हें अपना सच्चा जीवनवृत्तान्त सुना सकती और यह प्रयत्न करती कि संसार की बदली हुई परिस्थितियों में उच्च ज्ञान और सात्विक मनोरंजन में अपने मन को लगाकर स्वाभाविक शांति पा सके। वे यह न देख पाते थे कि स्वयं वे ऐसी शान्ति क्यों नहीं पा सकते! या उन्होंने ही उसे पाने का प्रयत्न तक क्यों न किया?

वे इला से खुले दिल से बातें करते थे। इससे इला प्रभावित हुए बिना न रह सकी।

सुधा का पत्र मिला, तब वे उसको पढ़कर पाषाण-प्रतिमा की भाँति निश्चल बैठे रहे।

उसी दिन उन्होंने कोगाको से अपना पूर्व वृत्तान्त ठीक ठीक-बतला दिया और उसकी सलाह माँगी।

कोगाको कुछ देर विस्मित-सा बैठा रहा। फिर वह बोला—आपके पतन का दोष विशेषतः आपकी शिक्षा के अस्वाभाविक ढंग और परि-स्थितियों की स्वाभाविक प्रेरणा को ही दिया जा सकता है। अकेले आपकी ही ऐसी दुर्दशा नहीं हुई है। सच पूछिए तो आपको बहुत ही जल्दी प्रकृति की ओर से दयामयी चेतावनी ऐसे जोरों के साथ मिल गई कि उसको अवहेलना करने की शक्ति ही आपमें नहीं है। दूसरे

कितने ही तो बिलकुल वरबाद हो गये, या बरबादी के इतने निकट पहुँच गये कि फिर उनका उद्धार हो ही नहीं सका। अब मैं भी सुख और शांति के साथ इटली में अपना काम कर सकूँगा।

चन्द्रसेन ने कहा—इसका क्या मतलब ?

कोगाको—इसका कोई गूढ़ आशय नहीं है। मैं चाहता था कि आप इला के जाल में न फँसे रहें। अपनी महान् संस्कृति और अपने विशाल देश को उस तरह अपनायें जैसे आप लोगों को मनुष्योचित रूप में उन्हें अपनाना चाहिए या जैसे आप लोग उस समय अपनाये थे, जब आपके देश को चीनी लोग 'थियेन-चु' कहते थे।

चन्द्रसेन—'थियेन-चु' क्या है ?

कोगाको—आपका देश देवताओं का देश था !

'थियेन-चु' देवताओं के देश को कहते हैं !

किन्तु, यह बात तो ईसा की पाँचवीं सदी की है। अगर आप सत्रहवीं सदी के वृत्तान्त देखें तब भी अपने देश को आप कम समृद्धिशाली न पायेंगे। उसके मुक़ाबिले का था ही कौन-सा देश ? कोई नहीं।

चन्द्रसेन—क्या मैं इतना भी नहीं जानता ?

कोगाको ने भौंहें टेढ़ी करके कहा—क्या जानते हैं ? जानने और न जानने में अन्तर क्या है ? छोटे-से जापान ने सौ वर्ष से भी कम समय में पश्चिमी देशों की बराबरी कर ली और आप लोग क्या कर सके ? अँगरेजों से आप एक ही गुण सीख सकते थे, उसको यदि सीख लेते तो इतने समय की पराधीनता भी एक प्रकार से उपयोगी ही सिद्ध हो जाती। वह गुण तरह-तरह के धर्मों और प्रान्तों के भावों के ऊपर राष्ट्रीय भाव की सुदृढ़ स्थापना है। राष्ट्रीयता के भाव का न होना विश्व-बन्धुत्व की निशानी नहीं है, बल्कि जीवन के एक आवश्यक और परमावश्यक अंग की बेहोशी का परिचायक है। अगर अब भी कोई देश इसे न समझे तो उसके लिए क्या कहा जावे ? मैं तो जापान की लड़ाई में बुलाया जाऊँगा। कल नहीं तो परसों, यानी साल-दो साल में अवश्य ही; पर आपसे मैं अपने हृदय की यह गुप्त से गुप्त

बात कहता हूँ कि मुझसे कैसे लोग जापान के 'सैनिकवाद' या साम्राज्यवाद से नहीं; बल्कि आपके--हाँ आपके देश के किसी ऐसे कार्य से--'वाद' से नहीं--संसार भर के उद्धार की फिर आशा रखते हैं। किस और देश ने बुद्ध और अशोक, कबीर और अकबर ऐसे विश्वव्यापी उदारता-वाले लोगों को उत्पन्न किया है ?

चन्द्रसेन मंत्र-मुग्ध-सा चुपचाप बैठा रहा।

कोगाको ने फिर कहा--इस तरह सिपाहियों को उत्तेजित कर, बड़ी-बड़ी शाबाशी और वाहवाही दे-देकर जो लोग अपने बल को पुष्ट कर रहे हैं, क्या हम उनके असली रूप को अब भी नहीं पहचानते ? ऐसा आप न समझिए। उसे पहचानकर ही हमें बरबस बुद्ध और अशोक की याद आ जाती है। धन का और जायदाद का चाहे जैसा बँटवारा कर दिया जाये, पर जब तक मानव-हृदय की दानवता, उसकी दूसरों के रक्त की प्यास और दूसरों को रुलाने की नीच इच्छा उन संतों-द्वारा बराबर हटाई न जायेगी, जो कठोर संयम और तप से अपनी वासनाओं को बहुत कुछ वश में कर चुके हों, तब तक संसार का सच्चा कल्याण हो ही कैसे सकता है ? ऐसे विश्ववंद्य संतों के लिए ही हम आपके देश की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखते हैं। क्या वह आपसी ईर्ष्या-द्वेष की क्षुद्रता और संकीर्णता में ऐसा फँसा रहेगा कि संसार की ये निगाहें निराश होकर नीचे झुक जायँ ? बोलिए, मैं आपसे पूछता हूँ, आप इसका क्या उत्तर देते हैं ? आपने इस आशा की पूर्ति में कौन-सा भाग लिया है ?

राजकुमार चन्द्रसेन को जान पड़ा, जैसे किसी ने एक बहुत ही जोरदार थप्पड़ उन्हें लगा दी हो। किन्तु किस प्रकार की ? उन्हें क्रोध नहीं आया, बुरा भी नहीं लगा, उनका हृदय ज़रूर व्याकुल हो गया और उन्हें ऐसी चोट मालूम हुई जो साधारण न थी।

साथ ही कोगाको की इन बातों को एक बार फिर सोचते ही उन्हें अपने प्राणों में एक ऐसे साहस की तरंग उठती जान पड़ी, जिसके अपने में मौजूद होने का विश्वास करना भी उनके लिए कठिन था। ऐसे सत्साहस

का उन्होंने कभी स्वप्न भी न देखना चाहा था। और अब उन्हें जान पड़ता था कि वही उनकी नई जिन्दगी की बुनियाद हो सकता है। और कुछ उसकी बराबरी कर ही नहीं सकता। सहसा उनकी आँखें भर आईं।

उन्होंने कोगाको से कहा--मैं अपने देश को लौट जाना चाहता हूँ। यही ठीक होगा न?

कोगाको--जरूर। यही तो मैं आपसे कहना चाहता हूँ। टेनिस के खेल में आप संसार भर में सर्व-प्रथम हो जायें, तो भी उससे क्या होगा? टेनिस के द्वारा आप कितने लोगों को सुख और शान्ति दे सकेंगे? किन्तु यदि आप अपनी शक्तियों और अपने साधनों का उचित उपयोग कर सकें तो अपनी रियासत को ही आप एक आदर्श राज्य बनाकर संसार के करोड़ों व्यक्तियों को सच्चा सुख दे सकेंगे और दूसरे लोगों को भी वैसा करने के लिए आमंत्रित कर सकेंगे।

चन्द्रसेन--मेरे पास तो अब कोई रियासत नहीं है--उसकी मै जरूरत भी नहीं समझता।

कोगाको--यही मेरा मतलब है। सच्ची सेवा के लिए रियासत न होने का बहाना तो कोई भी नहीं मान सकता। मनुष्यों के हृदयों को भी आप अपनी रियासत बनाना चाहें, मिट्टी और धातुओं से बने स्थानों को नहीं। ऐसा आप आसानी से कर सकते हैं।

राजकुमार--सभी कर सकते हैं। आप क्यों नहीं कर सकते?

कोगाको--सब नहीं कर सकते। मैं भी नहीं कर सकता। प्रत्येक देश की एक विशेषता होती है। आपके देश को जो विशेषता न जाने कब से मिली है, वह अब भी आपको सत्य के निकट औरों की अपेक्षा कहीं आसानी से पहुँचा सकती है। फिर पहुँचना तो सभी देशों को वहीं है। कुछ आप ही लोगों का उस पर ठेका हो जाय, यह तो हो ही नहीं सकता।

राजकुमार--तब?

कोगाको--तब आप लोग उचित दृष्टि से अपना काम प्रारम्भ तो कीजिए, अपने विशाल कर्मक्षेत्र में पदार्पण तो कीजिए। पहले महायुद्ध

में ब्रिटिश द्वीप के ही पचीस लाख लोग हताहत हुए और आठ अरब पौंड का क़र्ज़ा उस पर लद गया था। आपके देश के स्वर्ण-प्रवाह ने संसार के बाज़ार में उसकी इज़्ज़त रखी और आपके देश के दस-बारह लाख आदमी मरे-खपे भी; किन्तु उस सबका फल हुआ क्या? क्या इससे संसार में शान्ति स्थापित हो सकी? आवश्यकता तो हय है कि इस वैज्ञानिकता के प्रचंड प्रवाह की दिशा बदल दी जाय जो लाखों लोगों की हत्या देखकर कहता है––अभी तो शेष लोगों की संख्या यथेष्ट है, ये मरनेवाले तो नगण्य ही हैं। और वह ऐसा कहता है भावी-संसार के लोगों को सुख और शान्ति देने के शुभ उद्देश्य से! कौन इस मूढ़ता पर विश्वास कर सकता है? कैसी ग्लानिजनक और हास्यप्रद अवस्था हो गई है इस यांत्रिक और वैज्ञानिक संसार की? आप लोग अब इसे बचाइए।

कोगाको के स्वर में जो व्याकुलता थी उसने राजकुमार को फिर विचलित कर दिया। उसे एक क्षण के लिए ऐसा जान पड़ा, मानों सच-मुच यह उसी की इच्छा पर निर्भर है कि वह भावी संसार को जैसा चाहे वैसा कर दे।

अन्त में कोगाको ने कहा––क्या आप जानते हैं कि उन्नीसवीं सदी के शुरू में चीन ने उन गोरे लोगों को क्या उत्तर दिया था जो यूरोप से सामान लेकर वहाँ व्यापार करना चाहते थे? वहाँ के महाराज ने स्पष्ट कहा था, 'हमारा देश वे सब वस्तुएँ तैयार कर सकता है जिनकी हमें आवश्यकता है। हमें जंगली लोगों के देशों की किसी भी वस्तु की ज़रूरत नहीं है। बाद में निर्बल होने पर उसी चीन को ज़बर्दस्ती क्या-क्या नहीं लेना पड़ा, और क्या नहीं देना पड़ा? आप लोग चाहे जो समझते हों, पर विश्वास कीजिए कि अगर चीन अपने यहाँ से उन लोगों के व्यापार को बराबर हटा सकता, जो हम सबको 'रंगीन वर्णवाला' कहने लगे हैं और जिनकी ऐसी संकीर्ण-हृदयता है कि उनके साथ अफ़्रीका आदि में आप न तो एक बेंच पर बैठ सकते हैं और न एक डाकखाने में उस जगह से कुछ ले सकते हैं, जहाँ से वे

टिकट आदि लेते हैं। एक साथ खाने-पीने की बात तो बहुत दूर है। उन अवस्था में जापान चीन की एक इंच भी भूमि कभी न लेता। उसे ऐसा करने की जरूरत ही न होती।

चन्द्रसेन जैसे जग पड़े। उन्होंने कहा--नहीं, यह मैं किसी तरह नहीं मान सकता। आप मे और मुझमें यही मत-भेद अब भी बना हुआ है। पर आपकी आज की अन्य सब बातों में बहुत सार है--मेरे लिए भी।

और वे उठकर अपने कैबिन की ओर चले गये।

२४

कृष्णकुमार 'अशान्तिवादी' न होकर 'शान्तिवादी' थे, यही उनके अनेक साथियों को पसन्द न था। किन्तु वे इस विषय पर झुकनेवाले न थे। संसार में हम सब न्याय और शान्ति की प्रतिष्ठा चाहते हैं। अशान्ति के लिए नहीं, उचित शान्ति के लिए ही हमारे सब प्रयत्न हैं; यही उनका कहना था। किन्तु यह भी सत्य था कि जो कुछ वे कर रहे थे उससे उस शान्ति में, जो उसके पहले से क़ायम थी, विघ्न पड़ता था। उस शान्ति को वे सच्ची शान्ति न मानते थे। इस प्रकार उनके और अन्य कार्य-कर्ताओं के तात्कालिक कार्य-क्षेत्र में कुछ भी विरोध न था। वे सब एक क्षेत्र में ही कार्य कर रहे थे।

परन्तु अब ऐसा न रह गया था। कृष्णकुमार की ललितमोहन से ज्यों-ज्यों घनिष्टता बढ़ती गई, उनके साथी उनसे कार्यक्षेत्र में भी अलग होते गये। अब उनमें से कुछ उनके लिए 'रँगे सियार' आदि विशेषणों का प्रयोग करके अपनी विशेषता का रंग चमका देते थे।

ऐसे ही एक साथी ने एक बार कहा--कृष्णकुमार लड़कपन से ही ऐसे थे। जब कुछ लड़कों ने स्कूल छोड़ा तब इन्होंने भी उनका साथ दिया; बल्कि असल में इन्हींने उनका नेतृत्व किया। किन्तु दूसरे साल जुलाई में स्कूल खुलते ही आपने अपना नाम लिखा लिया। ऐसी ही हरकत कॉलेज में भी इन्होंने की। पर विश्व-विद्यालय में कभी चूँ तक न की। अफ़सोस की बात तो यह है कि लोग ऐसे ही तिकड़मी नेताओं की प्रशंसा किया करते हैं।

कृष्णकुमार तक ये बातें पहुँच जाती थीं। वे इनसे कभी घबराते न थे। स्वाभाविक नम्रता के साथ अतिशयोक्तियों और असत्यों का निराकरण कर देते थे। पर एक ऐसा भी दल था जिसकी बातों से तो

नहीं, कार्यों से वे सचमुच घबरा जाते थे। यह दल ऐसे लोगों का था, जो उनके नये प्रशंसक थे और प्रशंसक इसलिए हो गये थे कि अब उनके द्वारा राज-दरबार में कुछ काम मिलने की आशा उन्हें होती थी या कम-से-कम राजकुमार ललितसेन के साथ ऐसा परिचय प्राप्त कर लेने का अवसर मिलने की सम्भावना दिखती थी, जिसके द्वारा आगे चलकर कुछ लाभ उठाया जा सके। यह दल इस बात को साफ़-साफ़ कहने में तनिक भी लज्जित न होता था कि इस संसार में रुपया-पैसा ही सब कुछ है—सब कुछ! और जिस तरह भी वह मिल सके उसे लेने का उपाय करना चाहिए। यहाँ तक कि इसके लिए गधे को भी मामा कहना पड़े तो अवश्य ऐसा करना चाहिए। ये लोग अपने तरह-तरह के कामों से—जैसे खाने-पीने की चीज़ें भेज देना, सवारी का प्रबन्ध कर देना, मनोरंजन के सामान इकट्ठे करना—उन्हें बहुत परेशान कर देते थे। वे इन्हें जितना ही समझाना चाहते थे कि उन्हें इन कामों से प्रसन्नता नहीं होती, वे उनकी उतनी ही अधिक चापलूसी करने तथा और भी नज़रें भेजने की ज़रूरत महसूस करने लगते थे और अपने दिल में इन्हें 'पक्का धूर्त' समझते थे। ऐसे लोगों से किस तरह छुटकारा पाया जाय, यह कृष्णकुमार-जैसे तेज़ युवक की समझ में भी न आता था।

कभी-कभी इस दल में बेहद भोले-भाले और सच्चे व्यक्ति भी आ मिलते थे। ऐसे ही एक व्यक्ति ने एक बार रोते-रोते कृष्णकुमार को एक बहुत ही करुण कथा सुनाई, जिसका सम्बन्ध स्वयं उसके और चन्द्रसेन के एक अनुयायी के जीवन से था। उसके साथ जो अन्याय हुआ था उसका कुछ प्रतिकार अब भी हो सकता था। उसी के लिए उसने इतनी ढिठाई की थी। कृष्णकुमार ने उसे बतलाया कि चन्द्रसेन हिन्दुस्तान से बाहर चले गये हैं और उनका वह अनुयायी भी उन्हीं के साथ है।

उसने हताश होकर कहा—तब तो मेरे पार लगने का कोई भी उपाय नहीं है।

कृष्णकुमार ने उत्तर दिया--इस तरह पार लगने की बनिस्बत तो डूब जाना ही मुझे बेहतर जान पड़ता है।

उसने कहा--तब मैं वही करूँगी।

कृष्णकुमार ने समझ लिया कि उसने कुछ और ही अर्थ लगाया है। उन्होंने पूछा--क्या करोगी?

उसने कहा--डूब जाऊँगी।

'कैसे?'

'नदी में कूदकर।'

कृष्णकुमार का शरीर सिहर गया। उन्होंने कहा--क्या तुम समझती हो कि मैं किसी को ऐसी बात कहूँगा? नहीं, मेरा मतलब यह था कि जिस आदमी ने तुम्हें धोखा दिया है उसके साथ विवाह करने की अपेक्षा यह बेहतर होगा कि तुम किसी दूसरे आदमी के साथ अपना विवाह कर लो।

उसने कहा--ऐसा आदमी हिन्दू-समाज में तो मिल नहीं सकता।

कृष्णकुमार ने दृढ़ता से कहा--अब ऐसे लोगों की किसी भी समाज में कमी नहीं है।

उसने कहा--पर मैं तो उसे अब भी चाहती हूँ।

कृष्णकुमार आश्चर्य के साथ कह उठे--यह असम्भव है, यह तुम्हारा भ्रम है।

उसने कहा--पर यह भ्रम तो दूर नहीं हो सकता।

कृष्णकुमार ने कहा--दूर हो जायगा। परन्तु इसमें समय लगेगा। अभी तो उन्हें लौटने में कई मास लगे बिना रह ही नहीं सकते। तब तक मैं तुम्हारे रहने का प्रबन्ध, अगर तुम चाहो, राजकुमारी सुधा के पास कर सकता हूँ।

उसने कहा--क्या आप मुझे लज्जित करने के लिए यह बात कह रहे हैं?

कृष्णकुमार—अपनी बहनों के साथ यदि ऐसा व्यवहार करूँगा तो मैं स्वयं ही अपनी लज्जा सँभाल न सकूँगा। मैं जो कुछ कर सकता हूँ, वही कहा करता हूँ।

"तो आप मुझे राजकुमारी सुधा के पास भेज देंगे—बिना यह जाने हुए कि मैं कौन हूँ, या कहाँ की हूँ ?"

"यह सब मैं नहीं पूछ सकता।"

"कब भेज देंगे ?"

"आज, अभी।"

"तो मैं तैयार हूँ।" उसने यह बात ऐसे ढंग से कही, मानो वह अगाध जल में या भँवर में डूबने से बच गई हो।

२५

इला देख रही थी कि कोगाको का असर चन्द्रसेन जी के मन पर अधिक से अधिकतर होता जाता है और उसको यह पूरा सन्देह था कि उनकी बातों का विशेष सम्बन्ध उसी के जीवन की घटनाओं और बातों से होता है। वह जिन दो सुन्दरी स्त्रियों को अदन में जहाज़ पर अपने साथ ले आई थी उनमें से एक, जिसका नाम फ़ातिमा था, यथेष्ट पढ़ी-लिखी थी। उसे इस समय के संसार की राजनैतिक बातों का तो विशेष ज्ञान न था, किन्तु उसने यह सुन लिया था कि जिस तरह आयर्लैंड में, जो क्षेत्रफल और जन-संख्या में हिन्दुस्तान के एक सूबे की भाँति होने पर भी स्वतंत्र हो गया है, उत्तरी भाग के निवासी नया ईसाई-धर्म मानने के कारण पुराने ईसाई-धर्मवालों से अलग ही राग अलापते हैं और उनसे मिलने को तैयार नहीं हैं, वैसे ही हिन्दुस्तान में भी कुछ मुसलमान एक 'पाकिस्तान'-योजना बनाकर ऐसा दावा करते हैं कि इस योजना के कार्यान्वित हो जाने पर शेष हिन्दुस्तान में हिन्दू-मुसलमानों में विशेष न्याय-भाव रहेगा। उसे यह भी मालूम था कि इटली ने जब योरप के जो एक मात्र मुसलमानी राज्य—अल्बानिया पर क़ब्ज़ा कर लिया तब यही कहा गया था कि इस धर्म की रक्षा के लिए ही ऐसा किया जा रहा है। वह देख ही रही थी कि योरप ही नहीं एशिया में भी ईसाई-ईसाई में और मुसलमान-मुसलमान में कुछ कम लड़ाइयाँ नहीं हुईं और अब भी ज़मीन और ज़र तथा जन के लिए भी जो कुछ हुआ करता है उसे धर्म का भाव रोक नहीं पाता। फिर भी उसने कई दिन चन्द्रसेन से इस विषय पर बहस की।

सबसे आश्चर्य की बात इस बारे में यह थी कि वह कमालपाशा की प्रशंसा करने से भी बाज़ न आती थी। उन्होंने टर्की में जिस तरह मुल्लाओं को नीचा दिखाया तथा स्त्रियों को बुर्के से आज़ाद किया, उन

सब कार्य्यों को वह ठीक मानती थी। पहले तो चन्द्रसेन उससे बहुत संकोच के साथ बातचीत किया करते थे, फिर धीरे-धीरे यह अवस्था दूर हो गई। तब एक दिन उन्होंने स्पष्टत: पूछा——जिन कमालपाशा ने क़ुरान के क़ानून अलग करके स्विट्ज़रलैंड की राजनैतिक व्यवस्था अपने देश के लिए रखी उनकी तारीफ़ करते हुए भी आप अपने को इस्लाम की माननेवाली क्यों कहती हैं?

फ़ातिमा ने कहा——इस्लाम का अर्थ अंधविश्वास तो नहीं है। उचित पाबन्दी के साथ जिन्दगी बिताने की ही इस्लाम ने तालीम दी है।

चन्द्रसेन जैसे आश्चर्य में आये, उससे फ़ातिमा को कम विस्मय न हुआ। वह बोली——क्या इसमें आपको शक-सुबहा है? मेरी बात पर ताज्जुब में आ जाना तो मुझे बेवाजिब जान पड़ता है।

चन्द्रसेन ने कहा——ज़रूर ऐसा होगा। लेकिन उसकी वजह यह है कि आप अपने मुल्क के मुसलमानों का ख्याल करती हैं और मैं अपने मुल्क के। मेरे मुल्क के ज़्यादातर मुसलमान वैसे ही हैं, जैसे वहाँ के ज्यादा ईसाई——यानी वे सब हिन्दुस्तानी रंग-रूप के हैं, न कि टर्की, फ़ारस या काबुल के लोगों के वंशजों की तरह के। लेकिन उनमें से कितने ही, यह देखते हुए भी कि इस वक़्त एक देश दूसरे देश पर बिना धर्म या वंश के लिहाज़ के हमला कर रहा है, अपना अलग पाकिस्तान बनाने का दावा पेश करना ठीक समझते हैं और आपने उनके इस काम को बुरा मान लेने पर भी यह मंज़ूर नहीं किया कि हिन्दू-धर्म सबसे अधिक सहनशील है।

फ़ातिमा——मैं तो हिन्दू-धर्म नाम का कोई धर्म मानने को तैयार ही नहीं हूँ। हिन्दू-धर्म क्या है? वैष्णव-धर्म, शाक्त-धर्म, कबीर-पंथ, राधास्वामी, सिक्ख-पंथ, ब्राह्मधर्म, आर्यसमाजी धर्म वग़ैरह आपके यहाँ हैं। इन सब मज़हबों के बारे में मैं जानती हूँ। इनमें एकता अगर हो सकती है तो फिर इस्लाम और ईसाई-धर्म को भी आप इन्हीं में शामिल करके सभी को हिन्दुस्तानी धर्म कह सकते हैं। असल में हिन्दू-धर्म का मतलब किसी

मजहब से नहीं है, बल्कि हिन्दुस्तान से प्रेम रखनेवाली कुल क़ौम से है। इससे वहाँ के मुसलमानों और ईसाइयों को आप अलग कैसे कर सकते हैं ?

चन्द्रसेन—पहले जो लोग लखनवी और देहलवी ही नहीं, वहाँ के एक-एक गाँव के नाम पर 'जायसी' आदि लिखने में फ़ख्र महसूस करते थे उन्हें चाहे आप हिन्दू कहिए या हिन्दुस्तानी। लेकिन जो लोग 'हज' जाकर 'हाजी' बनने में उससे कहीं अधिक गौरव मानते हैं, जो वहाँ रहना अपने लिए उसी तरह मान लेते हैं जैसे कोई योरप या अमेरिकावाला अपने यहाँ जाना समझता है, उन्हें भी हिन्दुस्तानी कहना उनके साथ और हिन्दुस्तान के साथ ज़्यादती ही करना होगा।

फ़ातिमा—हरगिज़ नहीं। यहीं तो मैं आपकी राय से इत्तिफ़ाक नहीं करती। अगर वे ग़लती से या किसी के बहकाने से यह समझने लगते हैं कि दुनिया का कोई और मुल्क उन्हें अपनी औलाद की तरह मान सकता है, या उनका वैसा ख्याल कर सकता है तो यह उनकी नातजुर्बेकारी और खाम-खयाली के सिवा कुछ और हो ही नहीं सकता। अगर बाक़ी क़ौम सहनशील और उदार है, जैसा कि आपका दावा है, तो उसका यह फ़र्ज़ है कि ऐसे लोगों से बुरा न मानकर उनको ठीक रास्ते पर लावे। मुझे यह तो मालूम है कि वहाँ ऐसे मुसलमानों की भी काफ़ी तादाद है जो इस काम में पहले से ही लगे हुए हैं, लेकिन आप लोगों को भी उनका और साथ देना चाहिए। अगर कोई दूसरे देशवाले भी आपके यहाँ इतने ज़्यादा वक़्त—क़रीब एक हज़ार साल तक—रहते वे भी तो आपमें मिलकर एक हो जाते ! फिर यह अलगियत कैसी ? और तारीफ़ यह कि आप लोग कबीर और सूफ़ियों की पूजा करने को तैयार हैं। उस एक हज़ार साल के बीच में आप लोगों के जो पुरखे सबके साथ मिलकर मुल्क की शान बढ़ाते गये, कहाँ है अब वह शान ? क्या आप उन्हें बेवक़ूफ़ मानते हैं और अपने को अक़्लमन्द ?

चन्द्रसेन—मैं कहता हूँ, आप मेरे मुल्क में मेरे साथ चलिए। वहाँ

की हालत देखिए। आप जो कुछ करना चाहेंगी उसमें मैं आपका पूरा साथ दूँगा।

फ़ातिमा--वह ज़माना भी आ सकता है। लेकिन अभी तो मुझे अपने मुल्क की कहीं ज़्यादा फ़िक्र है। मैं इटली सैर-सपाटे के लिए नहीं, खास काम से जा रही हूँ।

चन्द्रसेन--आप यह पता लगाने जा रही हैं कि जो काग़ज़ात इला के एक अँगरेज प्रेमी के हाथ लग गये थे, उनका क्या हुआ ?

फ़ातिमा ने बिना तनिक भी विचलित हुए कहा--मुमकिन है आपका ख्याल ठीक हो--मेरे वहाँ जाने की एक वजह यह भी हो, लेकिन इसी एक वजह से मैं वहाँ जा रही हूँ, ऐसा कहना ठीक नहीं।

चन्द्रसेन--मैं आपको बतला सकता हूँ कि उन काग़ज़ों का क्या हुआ।

फ़ातिमा ने हँसकर कहा--जितना आप मुझे बतला सकते हैं उतना मैं पहले से ही जानती हूँ।

चन्द्रसेन--यही क्यों, शायद आप उससे भी ज्यादा जानती हों। कम-से-कम इतना तो आप जानती ही होंगी कि अदन में जिस आदमी ने मुझे रोक लेना चाहा था वह ऐसा क्यों करना चाहता था ?

फ़ातिमा--उसका ख़्याल था कि वे सब काग़ज़ात आपके ही पास हैं।

चन्द्रसेन--इला से उसकी जान-पहचान कब हुई थी ?

फ़ातिमा--यह जानकर आप क्या करेंगे ? लेकिन वैसे मुझे इसे बतलाने में कोई एतराज़ नहीं। वे इला से मोन्टीकार्लो में एक क्लब में मिले थे।

चन्द्रसेन--तो इला--ख़ैर, जाने दीजिए, मैं इन सबकी बाबत जान कर क्या करूँगा ? मैं अपने मुल्क लौट जाना चाहता हूँ।

फ़ातिमा--आप मेरे साथ इटली में उतरिए। फिर जैसा ठीक समझिएगा, वैसा कीजिएगा।

चन्द्रसेन--इला यह कभी पसन्द न करेंगी।

फ़ातिमा--वे आपका लौटना भी तो नापसन्द करेंगी ?

दोनों हँसकर चुप हो रहे।

२६

सुधा ने जिस दिन प्रतापादित्य को बुलाकर उनसे कृष्णकुमार के पुण्य कार्य में सहायता देने का अनुरोध किया था उस दिन वह यह कल्पना किसी तरह नहीं कर सकती थी कि उसकी कृष्णकुमार से इतनी जल्दी भेंट हो सकेगी। उसने सोचा था कि जब उसके पिता को यह मालूम होगा कि प्रतापादित्य ने कृष्णकुमार को पूरी सहायता दी है, तब वे उसे अपने यहाँ से अलग कर देंगे और फिर कभी यह संभव न होगा कि वह सुधा से मिल सके, कृष्णकुमार को लाने की तो बात ही क्या है ?

किन्तु जो कुछ हुआ वह इसके बिलकुल विरुद्ध था--उसके पिता प्रतापादित्य से चिढ़े नहीं, बल्कि यह भी संभव है कि स्वयं उनकी पूरी आज्ञा लेकर ही वह बाहर गया हो और उन्होंने उससे स्वयं ही कह दिया हो कि वह कृष्णकुमार को यहाँ ला सकता है। तभी तो उन्होंने भी उसकी खातिरदारी की। पर ऐसा क्यों हुआ ? क्या इसका कारण केवल यह है कि चन्द्रसेन के प्रति कभी रत्ती भर भी ममता उनके हृदय के किसी कोने में स्थान नहीं पा सकी, बल्कि वहाँ के महाराज को उन्होंने सदैव दंभी और अनुचित अभिमानी समझा ? अच्छा, तो क्या वे कृष्णकुमार की सहायता करके उन्हें नीचा दिखाना चाहते हैं ? और क्या यह भी सम्भव है कि. . . .।

इसके आगे सोचना उसे बहुत पीड़ाजनक और कठिन जान पड़ा, पर वह सोचे बिना न रह सकी—क्या मुझे भी इसके लिए एक साधन बनाना ठीक हो सकता है ? क्या वे इसे ठीक समझ सकते हैं ?

और उसने अपने आप हँसकर, इस शंका को मानों निर्मूल कर देने के लिए, कुछ ज़ोर से कहा--मैंने ही तो प्रतापादित्य को बुलाकर उनसे प्रस्ताव किया था। यह मेरा कैसा पागलपन है कि मैं सोचती हूँ

कि क्या वे मुझे भी इसमें एक साधन बनाना चाहते हैं। वे क्यों चाहेंगे ? मैं तो अपने मन से ऐसी बन गई हूँ। और इसमें बुराई तो है नहीं, अच्छाई ही है !

यह सोचने पर उसका मन मानों अमंगल की आशंका से विमर्ष हो उठा। किन्तु इस पर विजय पाने और इसके स्थान पर एक अपूर्व उत्साह अपने मन में लाने का उसने पूरा प्रयत्न किया।

उसी समय एक दासी ने आकर कहा—कृष्णकुमार जी की भेजी हुई एक दुःखिनी आई है। वह आपसे मिलना चाहती है। दुःखिनी होने के सिवा वह और कोई बात अपने बारे में बतलाना नहीं चाहती।

सुधा बोली—और कुछ पूछने-पाछने की ज़रूरत ही क्या थी ? उसे जल्दी यहाँ लिवा लाओ।

थोड़ी ही देर में उसने देखा कि एक लम्बी, पुष्ट, स्वस्थ-सबल सुन्दरी उस दासी के साथ आई। उसकी अवस्था चौबीस-पच्चीस वर्ष से अधिक न थी। वह साधारण मलमल की धोती पहने हुए थी, पर उसकी सुन्दरता उसी में से फूटी पड़ती थी।

सुधा ने उसे अपने पास बैठालकर मधुर स्वर में पूछा—आप अपने को दुःखिनी क्यों कहती हैं ? मैं आपकी क्या सहायता कर सकती हूँ ?

वह स्त्री कुछ देर तक चुप बैठी रही—जैसे गूँगी हो, या यहाँ का ठाठ-बाट देखकर दंग रह गई हो। फिर अपने को सँभाल कर बोली—उन्होंने मुझे आपके पास भेजा है जिससे आप मेरी सब तरह की सहायता करें। मैं सचमुच बड़ी दुःखिनी हूँ। ऐसी विपत्ति इस संसार में किसी शत्रु को भी न भोगनी पड़े। देखिए, यह चिट्ठी उन्होंने आपके लिए दी है।

पत्र बहुत संक्षिप्त था। उसमें लिखा था—आदरणीय महोदया, आपके दिव्य स्वभाव से मैंने यह स्वाभाविक आशा कर ली है कि आप इस पत्र-वाहिका बहन की पूरी सहायता करेंगी। आज वे कठिन क्लेश

और दुःख की अवस्था में हैं, किन्तु मुझे विश्वास है कि कल उनके भाग्याकाश के बादल हट जावेंगे और वे उस व्यक्ति की सच्ची प्रेम-पात्री बन सकेंगी जो आज उन्हें धोखा देकर भाग गया है। क्योंकि किसी को इस तरह का धोखा देना स्वयं अपने आपको धोखा देना होता है और इसी लिए वह अधिक समय तक ठहर नहीं सकता।

मंगलाकांक्षी,

——कृष्णकुमार

पत्र पढ़कर सुधा ने अपनी दृष्टि उस 'दुःखिनी' बहन के म्लान मुख पर फिर डाली। उसमें लज्जा या भय का कोई चिह्न न था, किन्तु गम्भीर वेदना अंकित थी।

दासी को हटाकर उसने पूछा——मैं इस पत्र से कुछ समझ नहीं सकी। कौन तुम्हें धोखा देकर भाग गया है? कहाँ भाग गया है? और वह कह बैठी——शायद तुम जानती होगी कि मुझे भी कोई धोखा देकर भागा है। पुरुषों से और आशा ही क्या की जा सकती है? क्या तुम उसे अब भी चाहती हो?

उत्तर मिला——मैं क्यों न चाहूँगी? वे भी मुझे धोखा नहीं दे सकते थे, लेकिन राजकुमार उन्हें अपने साथ लिवा ले गये हैं——ज़रूर ज़बर्दस्ती लिवा ले गये हैं!

"कौन राजकुमार?"

"राजकुमार चन्द्रसेन।"

"वे ही?"

"हाँ! वे ही तो।"

सुधा की आँखें डबडबा आईं। उसने कहा——हम दोनों एक दूसरे से यह शिकायत कर सकती हैं लेकिन ऐसा करने से कुछ लाभ न होगा। क्या तुम ऐसा नहीं कर सकती कि किसी दूसरे से अपना विवाह कर लो?

"ऐसा कैसे हो सकता है?"

"दूसरे सब देशों में तो ऐसा बराबर होता आया है—अब भी खूब होता है। इस देश में भी जिन्हें हम शूद्र कहते हैं, उनमें ऐसी आज़ादी स्त्रियों को मिली हुई है। फिर तुम ऐसा क्यों नहीं कर सकतीं ?" सुधा ने कुछ विचित्र स्वर में पूछा।

"संस्कार की बात है, और क्या कहूँ ? मैं ऐसा करूँ तो समाज में किसे मुँह दिखा सकूँगी ?"

"और अभी ?" कुछ कठोर स्वर में सुधा पूछ बैठी।

इसका कुछ उत्तर न मिला। उसके स्वर की कठोरता ने और निर्मम मुस्कान ने उस दुःखिनी को फिर गूँगी-सी बना दिया।

"क्या तुम यह जानती हो कि सभी राजा और राजकुमार अपने अनेक विवाह किया करते हैं ?" सुधा ने न जाने क्यों प्रश्न किया।

"जानती क्यों नहीं ? मैं भी तो बराबर रियासतों में ही रही हूँ।"

"अच्छा, तुम्हारा नाम क्या है ? क्या कहकर तुम्हें पुकारा करूँगी।"

फिर उत्तर न मिला। तब सुधा ने कहा—अच्छा, मैं तुम्हें सावित्री कहा करूँ तो ?

"क्या आप मुझे चिढ़ा रही हैं ?"

"चिढ़ाने के लिए तो मैंने ऐसा नहीं कहा। लेकिन अगर तुम्हें ऐसा जान पड़ता है तो मैं तुम्हें 'अहल्या' भी कह सकती हूँ। यह नाम पसन्द है ?"

"मैं न तो सीता-सावित्री हूँ और न अहल्या या कुन्ती। आप मुझे सविता कहा कीजिए।"

"सविता ! नहीं, नहीं, मैं तुम्हें सरिता कहा करूँगी—तुम कल-कल-प्रवाहिनी, चिर-निर्मला नदी के समान ही मुझे शान्ति देती रह सकोगी, ऐसा विश्वास मैं करने जा रही हूँ।"

इस बार उसने देखा कि इस सविता या सरिता की आँखें भी सजल हो गईं और उसके रोम-रोम से शुभ-कामना की सरिता बह उठी।

२७

इला को भी यह दिखलाई दे गया कि इस संसार में कोई ऐसी अद्भुत शक्ति भी है जिसका रहस्य मानव प्राणी के रहस्य से कहा दुरूह है। तर्क और बुद्धि के लिए तो उसे अगम्य मानना ही पड़ेगा। उसी के साथ सुसम्बन्ध स्थापित करके जीवन में ठीक तरह चला जा सकता है, यह भी उसने मानना चाहा, पर मान न सकी। एक विद्रूप परिहास उसके मादक ओंठों पर नाच उठा। विद्रोह के पथ में ही उसे अपने अभिमान की तुष्टि जान पड़ी और संसार के यश-वैभव की आशाओं को मृग-मरीचिका समझना उसे 'हिन्दुओं की सामाजिक जड़ता या पाशविकता' के सिवा और कुछ न जान पड़ा।

एक दिन कोगाको से उसने जापान की विवाह-प्रथा पर बातचीत की और उसे नीचा दिखलाना चाहा। 'वहाँ भी तो मध्यस्थों-द्वारा विवाह तय किया जाता है और पति के न रहने पर स्त्री का नहीं बल्कि संतान का ही सम्पत्ति पर अधिकार होता है।' उनके यहाँ की वेश्याओं की संख्या को लेकर भी उसने विषैले बाण छोड़ने चाहे, किन्तु कोगाको वहाँ से यह कहकर चला कि स्त्रियों के मुँह से वेश्याओं के प्रति किसी तरह की बात वह सुनना नहीं चाहता।

कोगाको ने मन ही मन कहा--मुझसे बढ़कर कौन यह जानता है कि जिस अग्नि-पथ पर प्रविष्ट होने से चन्द्रसेन ने अपनी दुर्दशा समझ ली है उसकी भयानकता प्रत्येक की—विशेषतः पश्चिम की इला-जैसी युवती सुन्दरियों की--बुद्धि की सीमा के भीतर नहीं है। इला पहले ही अनेक चोले पहन चुकी है। उसके लिए एक और नया चोला धारण कर लेना कुछ भी असंभव नहीं है, पर वह होगा निर्जीव भावनाहीन ही। मुझे तो यह देखकर हर्ष हो रहा है कि इस बार इला अभी तक ऐसा भी नहीं कर सकी।

एक और दिन वह आकर संसार-प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ 'मैकियावेली' की नीति को लेकर झगड़ने लगी। 'युद्ध की अपेक्षा सुधा-द्वारा लोगों को जीतने में मैकियाबेली ने कहीं अधिक साहस और कौशल माना था। पिछले महायुद्ध में भी जर्मनी इसी प्रकार हार गया था। इस समय इला ने भी यह पक्ष लिया कि अगर मानवी उन्नति बनाये रखने के लिए अन्यायियों को दंड देना हम सबके लिए आवश्यक और स्वाभाविक सोपान समझा जाय तब भी आधुनिक अस्त्रों की, हवाई जहाज़ों से घातक पदार्थों की वर्षा करने की और नाशकारी पनडुब्बियों आदि की ज़रूरत किसी तरह नहीं मानी जा सकती। व्यावसायिक ढंग से दूसरे देशों को सामग्री न जाने देना, आर्थिक असहयोग करके उनका व्यापार बन्द कर देना, लोहे, कोयले और तैल का ऐसा नियंत्रण करना कि उन देशों को कदापि न मिल सकें जो युद्ध को उकसाना चाहें, बस इसी से शान्ति क़ायम रह सकती है।'

कोगाको को इस 'अनधिकारचर्चा' पर पहले क्रोध आया, फिर उसने इला को बनाना शुरू कर दिया। वह बोला—मैं तो 'सिसरो' का यह सिद्धान्त मानता हूँ कि सबसे बड़ी अन्याय-संगत शान्ति भी बड़े से बड़े न्याय-संगत युद्ध से कहीं श्रेष्ठतर है। युद्ध का अफ़सर तो फ़ौजी दल को अपनी प्रधानता बढ़ाने का ऐसा मौक़ा देता है जिसका बुरा प्रभाव दूर करने में फिर न जाने कितना समय लग जाता है। बेशक फ़ौजी दल से शासित होने की अपेक्षा व्यापारिक दल से शासित होना कहीं अच्छा है।

सबने जान लिया कि कोगाको व्यंग से काम ले रहा है। वह यही कहना चाहता है कि क्या राजनीति के ये अंग साधारण लोगों की व्यक्तिगत शक्ति से बाहर हैं? जो अपनी शक्ति से जनता के संचालन का कार्य्य ले सके हैं वे अपने कर्त्तव्य का पालन कर सकें या न कर सकें, वे उचित साहस और नीच स्वार्थहीनता के पथ पर चलने में समर्थ हो सकें या संकीर्ण स्वार्थ और क्षुद्र मोह में फँसे खोखले जयजयकार के भूखे बनें और करोड़ों दीनहीन लोगों की वास्तविक पर भूख-हड़ताल की परवा न करके अपने तात्कालिक आर्थिक लाभ में

लग जावें, पर तुम लोग ऊँचे-ऊँचे सिद्धान्तों की दुहाई देने के सिवा, और कर ही क्या सकते हो ?

इसी समय चन्द्रसेन ने वह बात कही जिसकी अभी उनसे सुनने की किसी को आशा न थी। उन्होंने कहा---अपने देश में मैंने भी तरह-तरह के नीच काम किये थे। वे सब ऐसे थे कि अब उनमें से एक का भी वर्णन मैं आपमें से किसी के सामने करने में लज्जित होऊँगा। मुझे उनके लिए अनेक लोगों से---जिनमें इला भी एक हैं---विनम्र प्रार्थना करके क्षमा-याचना करनी ही पड़ेगी। फिर मैं अपने को जनता की सेवा के लिए ऐसे कामों में लगा दूँगा जिससे उनमें कल्याणकारी भावनायें एकत्रित हो सकें और वे अपने कर्त्तव्यों तथा अधिकारों को समझ कर उनके अनुसार कुछ काम कर सकें। इसी भाँति मैं अपने को कृतार्थ कर सकता हूँ और अपने पिछले कुकृत्यों के फलों से कुछ न कुछ छुटकारा पाने का विश्वास पा जाऊँगा। मैं आप लोगों से यही कहना चाहता हूँ कि मैंने अपना यह कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया है कि मैं अपने देश से दूर भागकर, जितनी जल्दी संभव होगा, उसके कर्म-क्षेत्र में पहुँच जाऊँगा।

कोगाको का चेहरा इस बात से प्रफुल्ल हो गया। किन्तु इला ने इससे अपने को अपमानित समझा और वह मुँह बनाकर वहाँ से उठ गई।

उसके चले जाने पर कोगाको ने कहा---देखिए, सस्ते भावों के प्रवाह में बहने से या किसी के चकमे में आने से न तो कोई व्यक्ति अपना कुछ उपकार कर सकता है, न किसी दूसरे का। समाज और देश की वास्तविक भलाई तो वह कर ही क्या सकता है ? हमारी ज़िन्दगी पशुओं के जीवन की तरह सीधी-सादी नहीं है, न हो सकती है। सभ्यता, संस्कृति, धर्म आदि की जटिलताओं को लेकर हम ऐसे बन गये हैं कि जन्मते ही अनेक संस्कारों का प्रभाव हमारे सुकुमार और संवेदनशील मस्तिष्क पर पड़ने

लगता है। हम चाहे जितना प्रयत्न करें पर विशेष तरह की संकीर्णतायें, पक्षपातपूर्ण इच्छायें और साधारण वासनायें अपने पंजे में हमें अवश्य जकड़ेंगी। फिर धीरे-धीरे ही हम उनसे छूट सकते हैं। हम सबकी यही दशा है। आप या मैं, इला या फ़ातिमा या अन्य कोई भी इससे बरी होने का दावा नहीं कर सकता।

चन्द्रसेन--तभी तो इला आपसे हमेशा दूर रहना चाहती है।

कोगाको--इला का विकास ऐसा हुआ है कि वह मुझसे बहुत घबराती है। इसमें उसका क्या दोष? वह यह समझती है कि आपको उसके चंगुल में रहना ही चाहिए। इसके लिए भी उसे दोष देना ठीक न होगा। उसे यूरोपीय सभ्यता के उस रूप के बड़प्पन का, जिसमें वह सामने से शिकार न करके विज्ञान और व्यवसाय की आड़ में 'रंगीन' लोगों को गुलाम बनाकर उन पर अपने यहाँ के लोगों का आधिपत्य रखना चाहती है, सच्चा विश्वास है! यह विश्वास भयंकर अज्ञानपूर्ण है, यह हम और आप समझ सकते हैं, वह नहीं समझ सकती। आपमें अपने देश के आत्मिक बल का अब भी व्यर्थ अभिमान शेष हो सकता है और मुझमें जापान के महत्त्वपूर्ण भविष्य का पूरा विश्वास है--वह भविष्य जो पूर्वी गोलार्द्ध भर पर अपना खास असर डाले बिना नहीं रह सकता और जिससे शेष संसार भी अछूता न रहेगा। आपका देश पंडितों को पैदा कर सकता है और धार्मिक भिक्षुओं को भी। लेकिन वैसी ज्ञानपूर्ण फ़ौजी जाति जो अपने मुल्क को ही सब कुछ समझे, अब वहाँ उत्पन्न नहीं हो सकती। यह काम जापान का है। अच्छा हो या बुरा, सब लोगों को इसे देखना और सहन करना पड़ेगा। पश्चिम में चाहे जिसका शासन हो, पर पूर्व में पंडित और भिक्षुक का नहीं बल्कि समर-क्षेत्र में सामना करनेवाले देशभक्त जापानी जाति का ही बोल-बाला होगा!

चन्द्रसेन ने उत्तेजित स्वर में कहा--आप ऐसी बात मेरे सामने कई बार कह चुके हैं। आप नहीं जानते कि यह बात आपकी और सब बातों

को मटियामेट कर दिया करती हैं! उसे भी जाने दीजिए। फ़ातिमा का कहना है कि दुनिया में स्वाधीन मुसलमानों की शक्ति अब भी निर्जीव नहीं हुई। अफ़्रीका में आधे मुसलमान हैं और वहाँ लोग ईसाई कम बनते हैं, मुसलमान अधिक। पहले भी निष्पक्ष लोगों ने मुसलमानी राज्य की चार्ल्स 'महान्' या पोपों की मनमानी से तुलना कर उसे कहीं अधिक वैज्ञानिक, सहनशील और भ्रातृभाव पर अवलम्बित माना है। हिन्दू लोग तो वर्णाश्रम को ऐसा बना चुके थे कि बिना दूसरा जन्म हुए कोई 'शूद्र' उच्चता का स्वप्न तक न देखे, पर अब वह भी वैसा अस्वाभाविक नहीं रहा! फिर आप लोग अपने लिए पूर्व का ठेका क्यों लिये बैठे हैं?

कोगाको--यह आप देखकर समझ सकेंगे, बातों से नहीं। न मुसलमानों में शक्ति है, न हिन्दुओं में--मुसलमानी देश छोटे-छोटे और पिछड़े हुए हैं। हाँ, हिन्दू चीन, जापान, लंका से मिल सकते हैं। चन्द्रसेन ने और भी अधिक उत्तेजना के साथ कहा--नहीं, यदि संघ बनेगा, तो एशिया भर का बनेगा और वह संसार-संघ का सहायक होगा, आप लोग भी कुछ देखेंगे और समझेंगे, हमी लोग नहीं। हिन्दुस्तान एक नये साँचे में ढल रहा है। यह आपको भी दिखाई देगा। इतना कहने के बाद वह वहाँ से उठकर सीधे फ़ातिमा के पास पहुँचा, जैसे कोई बुरी तरह जलकर डाक्टर के पास शान्ति देनेवाली ओषधि के लिए दौड़ा जावे!

जहाज़ पर अपने साथ वह तरह-तरह के फल ले गया था। वे सब ऐसे ढंग से रखे जाते थे कि ताज़े बने रहें। उन्हीं में से जब से फ़ातिमा ज़हाज पर आई, उसके पास भी एक भाग प्रतिदिन भेजा जाया करता था। इस समय से ज़रा ही देर पहले उसे आज का हिस्सा मिला था। उसने उनमें से कोई फल चखा तक नहीं, वह कुछ सोच रही थी।

चन्द्रसेन के आने से उसे प्रसन्नता हुई। उसने उन्हीं फलों को सजाकर उनके सामने रख दिया और कहा—मैंने सुना है कि आप लोग खाना खाने से पहले ख़ुदा से प्रार्थना करते हैं कि तूने जो कुछ मुझे

खाने को दिया है वह तुझे ही समर्पित किया जाता है। इसी तरह मैं भी आपकी भेजी हुई ये चीजें आपको ही दे रही हूँ।

चन्द्रसेन हँसकर बोले--भगवान् तो कभी खाते-पीते नहीं हैं, इसलिए उन्हें समर्पण करना कठिन नहीं, यह आपने सोचा है या नहीं?

फ़ातिमा ने इस बात से चिढ़ दिखलाकर कहा--क्या आप इसी लिए समर्पण किया करते हैं? अगर उन्हें समर्पित करने से खाना कम हो जाने की सम्भावना हो, तो आप उन्हें अँगूठा ही दिखाना चाहेंगे?

चन्द्रसेन--तब क्या? भूखे तो भजन भी नहीं होता! यह तो आज-कल के ही कुछ ऐसे दिमाग़वाले भी हो गये हैं जो भजन ही नहीं, सब कुछ. देश के देश तबाह करना-करवाना चाहते हैं। अभी इसी बारे में कोगाको से बातें हो रही थीं। मैं खलीफ़ाओं के शासन की प्रशंसा करता हूँ, उनके बहुत पहले अशोक और हर्ष ने जो कुछ किया उसकी अमिट छाप तो मेरे दिल पर है ही, पर आजकल के सभी शासकगण मुझे दूसरे देशों के लिए तानाशाहों से भी बढ़े-चढ़े दिखाई देते हैं। सिद्धान्तों में वे चाहे जितनी उड़ान भरें और लोकतंत्र, किसान, मजदूर, राज्य आदि-आदि के चाहे जो आदर्श जनता को बहकाने के लिए बतलाते जावें पर हैं सब व्यक्तिगत और अपने साथियों के समूह के स्वार्थ के पीछे दीवाने। जनता की परवा होती तो वे उसे यों न कटा सकते।

फ़ातिमा ने कहा--मैं भी ऐसा ही मानती हूँ। लेकिन फिर भी हमें दो बुराइयों में से एक को चुनना होगा। सारी दुनिया बुरी है, यह कहकर और उसे हिक़ारत की निगाह से देखकर हम अपने आपको बचा नहीं सकते। जिस तरह सभी आदमी कमज़ोर हैं--कुछ न कुछ बुराइयाँ हर एक में रहती हैं--फिर उन्हें छोड़ देना नामुमकिन है। उन्हीं में से कुछ लोगों को चुनकर उनके साथ सब काम करने पड़ते हैं। उसी तरह अगर इन तानाशाहियों में से किसी को हमें चुनना पड़े तो वह भी करना पड़ेगा।

चन्द्रसेन ने विस्मित होकर कहा--नहीं, न तो हमें इस तरह आदमियों के चुनने की सुविधा है, न तानाशाहों को। हम लोग तानाशाहों को चुन कैसे सकते हैं ? खासकर इस विज्ञान की तेज़ी के समय हम यह भी नहीं जान सकते कि कौन कितना ताक़तवर है। लेकिन हम एक काम कर सकते हैं--और मैं भी वही करना चाहता हूँ--कि जिस प्रजा के साथ अब तक मेरा बराबर सम्बन्ध रहा है, उसे यह विश्वास दिला दूँ कि मैं तानाशाह नहीं बनना चाहता, बल्कि उसका सच्चा सेवक बनूंगा।

फ़ातिमा हँसकर बोली--सच्चे तानाशाह बनने की यही तो ठोस सीढ़ी है !

चन्द्रसेन--तो क्या संसार में अब लोग अच्छे और सच्चे काम कर ही नहीं सकते ?

फ़ातिमा--कर क्यों नहीं सकते ? पर पहले से ही जो इस तरह ढिढोरा पीटना चाहें वे नहीं कर सकते। आप चुपचाप काम शुरू कीजिए।

चन्द्रसेन--मैं करना चाहूँ तब भी ऐसा नहीं कर सकता। राज-परिवार से मेरा सम्बन्ध है। राजकुमार लोग कोई काम चुपचाप नहीं कर सकते।

फ़ातिमा--सिवा ऐयाशी के कामों के।

चन्द्रसेन--वाह, वाह ! क्या ऐयाशी के कामों को कोई चुपचाप भी कर सकता है ? वह काम तो चुपचाप करने का होता ही नहीं है। शैतान की तरह शोहरत फैल ही जाती है--और बहुत जल्द। फल खाइए न ? आप तो बहुत दूर बैठी हैं !

फ़ातिमा आकर फलों के खाने में शरीक हो गई। तब फिर तरह-तरह से मुसलमानी राज्यों और प्राचीन भारतीय राज्यों तथा आधुनिक पश्चिमी राज्यों की तुलनायें होने लगीं।

२८

चिल्लाहट--शूल की कठिन पीड़ा की चिल्लाहट ! सबने दूसरे दिन देखा वह इटैलियन हृदय के शूल से व्याकुल हो उठा। दवाइयों से कुछ लाभ न हुआ और डाक्टर ने यह भी कह दिया कि अब वह अधिक समय तक नहीं बच सकता। जान पड़ता है कि यह बात वह स्वयं भी समझ गया। उसने कोगाको को अपने पास बुलाकर कहा--तुम लिख लो, मैं हस्ताक्षर कर दूँगा कि यहाँ मेरे पास सरकारी काग़ज़-पत्र आदि को छोड़कर जो कुछ है और इटली में भी मेरी जितनी सम्पत्ति है, उस सब पर रोमा का अधिकार होगा।

कोगाको को बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसे मन ही मन क्रोध भी कम नहीं आया। पर उसने यह लिख लिया और उस इटैलियन ने हस्ताक्षर कर दिया।

इस हस्ताक्षर के समय चन्द्रसेन भी रहें, यह कोगाको चाहता था, पर चन्द्रसेन को यह पसन्द न आया। अन्य कई लोग वहाँ उपस्थित थे जब यह हस्ताक्षर हुआ और इसके थोड़ी ही देर बाद उसकी इहलीला समाप्त हो गई।

रोमा उससे प्रातःकाल मिली थी--क़रीब दो घंटे उसी के पास रही थी। लेकिन फिर उसके निकट नहीं गई। उसने भी नहीं बुलाया।

जब कोगाको ने यह विरासत का पत्र उसे दिया, उसने ले लिया। मुँह से एक शब्द भी नहीं कहा। उसके चेहरे पर कुछ रेखायें आईं किन्तु कोगाको के लिए उनसे यह निर्णय करना असम्भव हो गया कि उनके पीछे कौन-सा भाव है।

अन्त में उसने कह ही दिया—मेरे साथ तुम ऐसा खेल क्यों खेल रही थीं ?

रोमा ने कहा—इसे आप मुझसे बढ़कर बता सकते हैं। आपके दिल और दिमाग़ में जापान के प्रति असीम प्रेम है, उसके ही गौरव का सुनहला स्वप्न आप बराबर देखा करते हैं। तब मुझसे ऐसा प्रश्न क्यों ? प्रतापी जूलियस सीज़र से कहीं बढ़े हुए समय का स्वप्न क्या हम लोग नहीं देख सकते ? क्या तुम्हीं लोगों में देशभक्ति है, हम लोगों में नहीं है ?

एक क्षण में कोगाको की आँखों के सामने से वह पर्दा हट गया जो किसी तरह हटता ही न था और शायद अन्य किसी तरह हट भी न सकता था !

अब उसने पूछा—क्या स्त्री होकर भी तुम स्त्री के विरुद्ध काम करोगी ? क्या तुम भी इला के पकड़े जाने में सहायता दोगी ?

रोमा ने कहा—क्या पुरुष होकर भी आप लोग लाखों चीनी पुरुषों का संहार करते तनिक भी लज्जित नहीं हुए ? इसमें स्त्री और पुरुष की कौन-सी बात है ? यह संसार स्त्री-संघों और पुरुष-संघों में तो बँटा हुआ नहीं है और न इस तरह बँट ही सकता है।

कोगाको ने कहा—फिर भी स्त्रियाँ कहीं अधिक दया-मयावाली मानी जाती हैं। उनके हाथ से क्रूर कृत्य क्या शोभा दे सकते हैं ?

रोमा—बुरे काम किसी के लिए भी अच्छे नहीं होते। लेकिन मैं कोई बुरा काम नहीं करूँगी। एक—और केवल एक—ऐसा उपाय है जिससे मैं इला के खिलाफ़ कुछ नहीं करूँगी। किन्तु उसको काम में लाना या न लाना आपके या इला के हाथ में नहीं है।

कोगाको—किसके हाथ में है ? चन्द्रसेन के, फ़ातिमा के या और किसी के ?

रोमा—यह मैं इटली पहुँचने पर बतलाऊँगी।

कोगाको—खूब, इटली पहुँचते ही तो इला पकड़ी जा सकती है।

रोमा—नहीं, ऐसा न होगा—इसकी ज़िम्मेदारी मैं लेती हूँ।

कोगाको—बड़े से बड़े अधिकारी जिस संसार में अपनी प्रतिज्ञायें धड़ाधड़ तोड़ रहे हैं उसमें तुम्हारी इस बात का विश्वास कैसे किया जाय ?

रोमा—बड़े लोगों के लिए अपनी बड़ी बातों पर क़ायम रहना उनके क़ाबू के बाहर हो जाता होगा, लेकिन छोटे और साधारण लोगों के लिए अपनी छोटी-छोटी और साधारण बातों पर जमे रहना नामुमकिन नहीं होता।

कोगाको—मैं तुम्हारे बारे में यह बात कैसे मान लूँ ?

रोमा ने हँसकर कहा—जैसे अब तक सभी प्रेमी लोग अपनी प्रेमिकाओं की बातें मानते आये हैं।

कोगाको—मानते और बेवक़ूफ़ बनते आये हैं।

रोमा—जो लोग बेवक़ूफ़ बनने योग्य होते हैं वे ऐसा बने बिना नहीं रहते, चाहे किसी प्रेमिका के ज़रिये बनें या और किसी तरह। और इस संसार में पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को इस बारे में कहीं अधिक कष्ट का भागी होना पड़ा है और जब तक उनका स्वभाव पुरुषों की तरह का कठोर न हो जायगा तब तक उनका भाग्य ऐसा ही रहेगा !

कोगाको—अच्छा तो है, और कठोर बनने का अभ्यास तुम लोग करो !

रोमा—अभ्यास करने की शक्ति उनमें होती तो वे ऐसा करती हीं—पर विधाता ने उन्हें ऐसी शक्ति ही नहीं दी है।

कोगाको—अभ्यास से ही कठोरता की शक्ति आती है और दूसरे किसी में वह कुछ कम हो तो हो, किन्तु तुममें उसकी कमी नहीं है, यह मैं बतलाये देता हूँ।

रोमा—आपकी यह सनद मुझे नया गौरव दे देती, अगर सचमुच में उसके योग्य होती। परन्तु या तो मैं जानती हूँ या अन्तर्यामी ईश्वर कि असल में इस बारे में मेरी अशक्ति कितनी अधिक है!

कोगाको—नहीं, थोड़ा-बहुत तो अब मैं भी जानता हूँ।

रोमा उठकर खड़ी हो गई और उग्र स्वर में बोली—तुम क्या जानोगे? तुम तो स्त्री को अपने मनोरंजन की एक सामग्री समझते हो या अपने देश के लिए सिपाहियों को पैदा करनेवाली एक कल। तुम स्त्री की सजीवता को, उसकी प्रेम की बात को समझ ही क्या सकते हो? इटैलियन स्त्रियाँ अपने देश को चाहती हैं पर वे पुरुष और स्त्री को ईश्वर का बनाया सर्वश्रेष्ठ प्राणी मानती हैं, उन्हें अन्य नहीं समझा करतीं।

कोगाको ने यह सुनकर ऐसी भयंकर हँसी हँसी कि रोमा को वहाँ से हट जाना ही उचित मालूम पड़ा। किसी की हँसी इतनी घृणाव्यञ्जक हो सकती है, यह वह अब तक न जानती थी।

२६

प्रतापादित्य ने ही एक दिन राजकुमारी सुधा को राज-दरबार की किसी ऐसी योजना का हाल सुनाया जिससे सविता के जीवन पर उसके लिए नया प्रकाश पड़ गया, यद्यपि उस योजना का वर्तमान समय से नहीं बल्कि भूतकाल से सम्बन्ध था।

प्रतापादित्य ने बतलाया कि एक बार दौरा करते हुए महाराज के मन में एक महान् संकल्प ने स्थान पा लिया। उसका सम्बन्ध कवियों की काव्य-कला से था। राज-दरबार में कई कविगण सदैव के लिए रख लिये गये थे। समय समय पर उनकी कविताओं से विशेष मनोरंजन भी प्राप्त किया जा चुका था। किन्तु समय के तूफ़ानी प्रवाह ने महाराज पर भी अपना प्रभाव डाला। शृंगाररस की, रहस्यवाद की, छायावाद की, हाला-प्यालावाद की कविताओं से महाराज को संतोष न होता था। किन्तु जब वे उन कवियों से वीर-रस की और स्वतंत्रतादेवी को तुष्टि दे सकनेवाली रचनायें बनाने को कहते तब वे या तो अपने-अपने ढंग की काव्य-कला का महत्त्व बतलाने लगते या स्पष्टतः अपनी असमर्थता प्रकट करके कह देते कि उनके प्राणों और मस्तिष्क को प्रेरित करने-वाला वैसा कोई प्रधान भाव उनमें हो ही नहीं सकता। वे सब अमर-पथ के पथिक बनने के लिए अपने गीतों को ही एक-मात्र स्वाभाविक साधन सिद्ध करना चाहते थे। इन्हें ही वे 'अमर-गान' कहते थे। उनसे अधिक तर्क करना पत्थर से या पहाड़ से अपना सिर फोड़ना था। इसी लिए महाराज के मन में यह संकल्प आया कि विज्ञापन देकर अन्य सभी स्थानों से उन लोगों को इकट्ठा किया जावे जो सचमुच इस योग्य हों कि देश और काल के अनुसार उचित अनुभूति पा सकें और स्वतंत्रता के ऐसे गीत गा सकें जिनसे कायरों में भी नई स्फूर्ति का संचार हो।

सुधा ने उत्सुकता के साथ कहा—क्या सचमुच ऐसा कभी किया गया था ?

प्रतापादित्य—मैं आपसे झूठ क्यों बोलूंगा ? सभी लोगों के जीवन में समय-समय पर सच्चे उत्साह और मनुष्यत्व की तरंगें आया करती हैं। हाँ, धीरे-धीरे अवसर न पाने से और निरन्तर उपहास ही होता देखकर वह उत्साह ठंढा पड़ जाया करता है। अधिकांश व्यक्तियों की ऐसी ही दुर्दशा होती है। कुछ की अजेय शक्ति अवश्य ऐसी होती है कि वे सभी विघ्न-बाधाओं पर विजय पा जाते हैं, या कम से कम उनसे निर्जीव नहीं हो जाते। राजाओं-महाराजाओं के लिए भी ये नियम लागू होते हैं। महाराज ने विज्ञापन दिलाया और एक बड़ी सभा की तैयारी की जाने लगी। निश्चित तिथि पर यह सभा हुई। रात भर होती रही। प्रातःकाल जब महाराज उठे तब उन्होंने अपने हाथ से एक युवक के गले में विजय-माला पहना दी। उन्हें बाद को मालूम हुआ कि यह युवक साधारण युवक नहीं है यह एक ऐसे दल का नेता है जिसने रियासतों के आन्दोलनों में सबसे अधिक भाग लिया है। दूसरे ही दिन महाराज ने यह आज्ञा जारी कर दी कि उसका उनकी रियासत में प्रवेश नहीं हो सकता। वह युवक चला गया और फिर उसके बारे में इधर कुछ समय से कुछ भी सुनाई न दिया था। अब मैंने पता लगा लिया है कि उसी युवक ने हिन्दुओं के सनातनी समाज के जाति-पाँति के बन्धन को तोड़कर आपकी सविता से अपना सम्बन्ध जोड़ा और फिर राजकुमार चन्द्रसेन के साथ इस इच्छा से बाहर चला गया जिससे वह इँगलेंड आदि स्वतंत्र देशों के वीरों से और भी ऐसी स्फूर्ति लावे जो आगामी संकट-काल में सच्ची स्वतंत्रता की जननी हो सके !

इस सब वृत्तान्त को सुनकर सुधा चिन्तित हो उठी। उसने कहा—अच्छा, उस कवि का नाम तो आपने बतलाया ही नहीं।

प्रतापादित्य ने कहा—इस समय उसने अपना नाम 'नवीन' रख लिया है। इसी नाम या उपनाम से उसे सब लोग जानते हैं।

सुधा ने कहा--जब वह कवि वापस आ जावे तब आप मुझे बतलाइएगा। मैं उसे यहाँ आने के लिए निमंत्रण भेजवाऊँगी।

प्रतापादित्य--मैं आपको बतला दूँगा। किन्तु वह यहाँ कभी न आवेगा। उसके-जैसे कवि कितने आत्माभिमानी होते हैं, यह आप नहीं जानतीं।

सुधा हँसकर बोली--मैं उसका आत्माभिमान नष्ट करने के लिए तो उसे यहाँ नहीं बुलाना चाहती। मैं उसे इसलिए बुलाना चाहती हूँ जिसमें वह मनुष्योचित अभिमान को और भी पूर्णता से अपना ले! पर आपको इससे क्या कि वे आवेंगे या नहीं। आप तो मुझे बतला दीजिएगा।

प्रतापादित्य--ज़रूर।

जब प्रतापादित्य चला गया, सुधा ने सविता को अपने पास बुलाकर हँसते हँसते पूछा--तुमने न तो अपना नाम बतलाना चाहा और न अपना ग्राम, किन्तु क्या तुम इतना बतला सकती हो कि तुम नवीन कवि को जानती हो या नहीं?

सविता चौंक पड़ी। बोली--जब आपने सब पता लगा लिया है तो मुझसे क्यों पूछना चाहती हैं?

सुधा--सब पता लग गया होता तो तुमसे क्यों पूछती? क्या तुम्हें उनकी किसी कविता में विशेष आनन्द आता है? मैं आज तक कभी ऐसा आनन्द किसी कविता में नहीं पा सकी, इसी लिए तुमसे यह प्रश्न कर रही हूँ।

सविता ने कहा--आप ऐसा कैसे कह सकती हैं? सुन्दर शब्दों की योजना ही हमें एक प्रकार का आनन्द देने में समर्थ हो जाती है, फिर वास्तविक कविता, जिसमें भावों के अनुपम सौंदर्य और शक्तिपूर्ण सत्य का गौरव रहता है किसे अपूर्व आनन्द नहीं दे सकती?

सुधा--सत्य को ग्रहण करने के लिए जिस विवेक-शक्ति की ज़रूरत होती है उससे अधिकांश लोगों को वंचित ही देखा जाता है। कवि

तो अपनी जन्मजात या परिश्रम से प्राप्त प्रतिभा के अभिमान से ऐसा अन्धा हो जाता है कि उसमें सत्य के अन्वेषण के प्रति उचित उत्साह ही नहीं रहता। इसी से कभी-कभी तो वह अपने निरर्थक वाक्यों या बेहद उलझे हुए भावों को ही सब-कुछ मान बैठता है। मैं तो किसी से इतना दूर नहीं भागना चाहती जितना कवयों या कवयित्रियों से!

सविता—तब तो आपको किसी वास्तविक कवि से मिलने की विशेष आवश्यकता है, नहीं तो आप उन सबके प्रति ऐसा ही अन्याय करती रहेंगी।

सुधा—तो तुम अपने कवि को बुलाओ न?

सविता ने एक तप्त साँस खींचकर कहा—अगर मेरे किये ऐसा हो सकता तो फिर क्या था? आप ऐसा कर सकती हैं।

सुधा—खूब! अगर मेरे किये ऐसा हो सकता तो फिर क्या था! मैं तो और भी कुछ नहीं कर सकती। क्या तुम समझती हो कि राजकुमारी हो जाने से ही हम लोगों को मनमाने अधिकार मिल गये हैं?

सविता—यह मैं क्या जानूँ?

सुधा—तुम कविता नहीं बनातीं?

सविता—मैं? मैं कैसे बनाऊँगी? संसार के वीर पुरुषों की गाथाओं को पढ़कर ही लोग वास्तविक कवि बन सकते हैं। वे उनमें से किसी न किसी के आदर्श से ऐसे प्रभावित हो जाते हैं कि उनकी प्रशंसा में उनके मुँह से अपने आप कविता की धारा फूट पड़ती है। मैं तो बहुत कम वीरों को जानती हूँ। उनकी परस्पर तुलना करके उनके कार्य्यों का असली मूल्य परखना तो मुझे अपनी शक्ति से बाहर जान पड़ता है। फिर जब मैं किसी के आदर्श को वैसा अपना नहीं पाई तब मैं क्या गाऊँ, क्या रोऊँ?

सुधा—तुम विरह के स्वाभाविक गीत गा सकती हो।

सविता--जो देश अपना सब कुछ खो बैठा हो, उसमें ऐसे गीत गाना पागलों-जैसा प्रलाप होगा।

सुधा--उसी में तो ये गीत गाने चाहिए ! तुम अपने प्राणों को इस देश के प्राणों के साथ जितनी आसानी से मिला सकती हो वैसा दूसरा कौन मिला सकता है ? तुम्हीं ने तो अभी कहा था कि इसने अपना सब कुछ खो दिया है। तुम्हें भी तो जान पड़ता है कि तुम्हारा अपना सब कुछ चला गया है। तब तुम्हारे हृदय की अवस्था से बढ़कर और कौन-सी अवस्था इस देश की समवेदना की अनुभूति के लिए होगी ? मैं तो समझती हूँ कि तुम्हारे दुख-पूर्ण गीत से इस देश का एक-एक पाषाण-खंड भी पानी-पानी हो जावेगा।

सविता चुप बैठी रही। पर उसका मन फिर यही कह रहा था--काश ऐसा सचमुच हो सकता !

और जब वह वहाँ से उठकर गई तब स्वयं सुधा को अपने हृदय में, अपने मन में, सचमुच ऐसी स्फूर्ति जान पड़ी, जो उसे पत्र लिखने की ओर प्रेरणा दे रही थी। तब उसकी एक सुन्दर रचना काग़ज़ के एक साधारण पृष्ठ पर असाधारण रूप से लिखी गई।

पर उसने यह निश्चय कर लिया कि उसे वह किसी को भी न दिखलावेगी ! कदाचित् सभी संकोची कवि अपनी पहली रचना के बारे में ऐसा ही निर्णय किया करते हैं और थोड़े ही समय में उस निर्णय को वैसे ही तोड़ देते हैं जैसे आजकल के राजनैतिक समझौता करनेवाले अनेक 'कूटनीतिज्ञ' लोग अपनी सुलह की शर्तों को, क्योंकि दूसरे दिन ही उसे वह सविता को दिखाये बिना रह न सकी !

३०

ललितसेन को कृष्णकुमार का साथी बनते देखकर जो अन्तिम प्रहार चन्द्रगढ़ के महाराज कर सकते थे वही करने में उन्होंने अपने कर्त्तव्य-पालन का औचित्य समझा—राजकुमार को उन्होंने सूचित कर दिया कि अगर वे अपना यही ढंग जारी रखेंगे तो उनसे उनको अपना सब सम्बन्ध तोड़ देना होगा। ललितसेन ने पहले से ही इसकी आशा कर ली थी, इसलिए उन्हें इससे एक प्रकार का हर्ष ही हुआ। उन्हें अपने सबसे बड़े भाई चन्द्रसेन का एक पत्र योरप से मिला था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे यह बहुत बुरा समझते हैं कि उनका कोई भी भाई किसी दूसरी रियासत में कोई हक़ पाना चाहे। वे यह कहीं अधिक पसन्द करेंगे कि अपनी रियासत का प्रबन्ध अपने सब भाइयों और उनसे चौगुने लोक-तन्त्र की ओर से चुने लोगों के हाथों में रखें। समय की यही माँग है और ऐसा करके वे अपने उचित कर्तव्य का पालन ही करेंगे।

इस पत्र ने ललित के उत्साह को चौगुना कर दिया था।

उन्होंने यह पत्र उसी दिन कृष्णकुमार को दिखलाया। दोनों ने मिलकर उसका उत्तर तैयार कर लिया और वह महाराज के पास भेज दिया गया।

इसके तीसरे दिन ही उन्हें भद्रसेन के बम्बई आ जाने की सूचना मिली। वे उसी समय उनसे मिलने के लिए चल खड़े हुए।

भद्रसेन तीन साल से भी अधिक योरप में घूमकर तब लौटे। उनका दिल वहाँ के देशों की औद्योगिक उन्नति से, तरह-तरह के हजारों कारखानों की विचित्र तरक़्क़ी से, ऐसा प्रभावित हुआ था कि वहाँ से लौटते ही उन्होंने अपनी रियासत में कई कारखाने खोलने की पूरी योजना वहीं बना डाली थी और उनके लिए कितनी ही मशीनें खरीदकर भेजवा

चुके थे। अमरीका में जो मोटर चौदह-पन्द्रह सौ रुपयों में बिकती है वह यहाँ पहुँचते-पहुँचते साढ़े तीन हज़ार रुपयों की हो जाती है—यानी ढाई गुना क़ीमत की। जितना उसका मूल्य होता है, उसका डेवढ़ा महसूल, चुंगी आदि में दे देना पड़ता है। रंगों का तो जर्मनी ने ठेका ले रखा है और घड़ियों आदि का उन छोटे-छोटे देशों ने, जिनकी आबादी यहाँ के एक-एक ज़िले के बराबर है। यह स्थिति उन्हें अत्यन्त लज्जाप्रद जान पड़ी। एक-एक व्यापार में करोड़ों रुपये हमारे देश से जा रहे हैं और फिर भी, हम उस दिशा में कुछ नहीं कर पा रहे हैं। हम मशीनें भी क्यों नहीं बनाते? कई मशीन बनाने की मशीनें भी उन्होंने भेजवाईं।

अब उन्होंने ललितसेन से कहा—यह व्यापारिक राज्य का समय है। मि० राकफेलर का मिट्टी के तेल से चालीस करोड़ रुपये सालाना कमा सकना राजा-महाराजाओं की आमदनी को नीचा दिखा देना है या नहीं? अमरीका के लोगों ने संसार भर के तेल पर अपना आधिपत्य कर लेना चाहा। रूमानिया में उनकी कई बड़ी बड़ी कम्पनियाँ स्थापित हुईं। जिनसे अँगरेज़ी कम्पनियों से संघर्ष चला। एशिया में भी उनकी कम्पनियाँ अपना काम करने लगीं। हम लोग ऐसी संगठन-शक्ति क्यों नहीं पा सकते? हमें पूरा प्रयत्न करके देखना तो चाहिए। योरप में व्यापार में कुशल यहूदी जाति समझी जाती थी। हमारे यहाँ जैनी, मारवाड़ी, खत्री और भार्गव आदि कई ऐसा गुण रखने पर भी अपना संगठन क्यों नहीं कर सके? अब तो जनता मात्र में आर्थिक संगठन का प्रबल भाव वहाँ आ रहा है, वही यहाँ भी होना चाहिए। या 'यहूदी' बनोगे?

ललित को उनका यह प्रश्न अच्छा न लगा। उन्होंने कहा—यहूदी जाति की तरह अन्तर्राष्ट्रीय व्यापारी बनना और अपने देश का ध्यान न रखना तो आप कभी ठीक नहीं मान सकते। पहले महायुद्ध के समय 'बालफोर' घोषणा करके पैलेस्टाइन में उन्हें बसने का स्थान देने की प्रतिज्ञा

करके अँगरेज़ी सरकार ने धन तो पा लिया पर अन्त में वेलिंगवाल--रोनेवाली दीवाल--के निकट यहूदियों का सचमुच पूरा रोना-पीटना उनको देखना पड़ा।

भद्रसेन--वह रोना वहाँ से भागने के लिए तो न था। सच पूछा जाय तो वैसी ही विचित्र और अद्‌भुत मिलनभूमि पैलेस्टाइन है--जैसे विशाल हिन्दुस्तान। यह पैलेस्टाइन अब अरब लोगों का देश है। वे सात सौ वर्षों से अधिक समय से यहाँ रहते आये हैं। यहूदी उसे अपना देश मानते हैं। कुल दस लाख आदमी यहाँ बस सकते हैं। इसमें अरब लोग ही सात लाख से कम न थे। फिर भी कई लाख यहूदी यहाँ आये। पहले उनके धन से अरबों को भी आराम ही मिलता जान पड़ा। पर जब ढाई लाख एकड़ से ऊपर ज़मीन यहूदियों को मिल गई तब अरब लोगों को कष्ट होने लगा। यहूदियों का व्यवहार तो अन्य धर्मवालों के प्रति सदैव ही बेहद संकीर्णता का रहा है। इसलिए यहाँवालों को और बुरा मालूम हुआ। जिस वेलिंगवाल या रोने की दीवाल की बात तुम कहते हो, वह हज़रत मूसा के समय की है। वहाँ जाकर यहूदी लोग स्यापा करते हैं--रोते हैं। वहीं मुसलमानों की मसजिद भी होने से अरबवाले वहाँ इकट्‌ठे होते हैं और उन्हें यह रोना पसन्द नहीं आता। ईसाई लोग भी, ईसा की जन्मभूमि होने से, पैलेस्टाइन को पवित्र भूमि समझते हैं। इस तरह जहाँ इन सब धर्मों का सम्मेलन हो सकता था और यह सिद्ध किया जा सकता था कि धर्मों में पूरी सहनशीलता का भाव है, क्योंकि उनके वास्तविक सिद्धान्त एक ही हैं, वहाँ ऊपरी अन्तरों को लेकर लड़ाई-झगड़ा का तूफ़ान खड़ा कर दिया गया। ऐसे ही कारणों से भौतिकवादी 'धर्म' के नाम से ही नाक सिकोड़ते हैं।

ललित ऐसे भौतिकवादी कभी न हुए थे, इसी लिए उन्होंने कुछ पीड़ित से होकर कहा--उनका ऐसा करना क्या आप ठीक समझते हैं? उन्हीं में कौन पूरा मेल है? वे भी तो वैसी ही--बल्कि उससे कहीं

बढ़कर––लड़ाई की प्रवृत्ति रखते हैं। धर्म में सुधार उन्हीं के कारण नहीं हो पाता। यह सुधार––

भद्रसेन बोल उठे––मैं सब सहन कर सकता हूँ, पर धर्म में सुधार करने की बात सुनना मेरी सहनशीलता के बाहर है। ऐसे सुधार के सम्बन्ध में बातें करना भी हास्यप्रद है। इसका अर्थ है उन लोगों का सुधार जो अपने को सबका गुरु मानते हैं। कौन उनमें सुधार करने में समर्थ हो सकता है? जो कुछ वास्तव में हो सकता है और हो रहा है वह यही है कि सार्वजनिक संस्कृति और मानवमात्र के मिलन में धर्म, संस्कृति, जातीयता आदि के नाम से जितनी बाधायें संकीर्ण-हृदय के व्यक्तियों-द्वारा उपस्थित की जाती हैं और लोकहित के विरुद्ध जो तरह-तरह की प्रथायें चला दी गई हैं उन सबका सख्ती के साथ उन्मूलन किया जावे––उसमें रू-रियायत की तनिक भी ज़रूरत नहीं।

भद्रसेन से ऐसी बात सुनने की ललित को आशा न थी। उन्होंने कहा— यह तो वैसी ही असहनशीलता हो जावेगी जिसको आप अभी बुरी बता चुके हैं। जो लोग अपना विकास अभी उतना नहीं कर पाये जितना कुछ थोड़े-से विशेष विद्वान् और अनुभवी तथा चरित्रवान् लोग किसी तरह कर सकते हैं। उन्हें अपने स्वाभाविक विकास के लिए धीरे ही धीरे चलना होगा। आप उन पर ज्यादती करके या उन्हें जबर्दस्ती अपनी ओर घसीट कर उनकी या अपनी कोई अच्छाई कैसे कर सकते हैं?

भद्रसेन––कर सकते हैं––ज़रूर कर सकते हैं। और फिर जैसे दो मुल्क आपस में लड़ रहे हों तब यह आपत्ति नहीं की जा सकती कि जो लोग अभी अठारह-बीस वर्ष के ही हैं, उन्हें सिपाही न बनाया जावे क्योंकि वे अपना विशेष विकास नहीं कर पाये हैं और उनका सिपाही बनकर मर जाना अच्छा न होगा। वैसे ही जब संसार में मानवता और अन्य सिद्धान्तों के माननेवालों का विरोध होता है तब इस सर्वोच्च सिद्धान्त के माननेवाले दूसरों को अपना मूर्खतापूर्ण और तुच्छ विरोध करने के लिए स्वतन्त्र नहीं

छोड़ सकते, क्योंकि वे उस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग ही करेंगे--अपनी उच्छृङ्खलता ही प्रकट करेंगे।

मन ही मन ललित ने क ा--वे भी तो 'मानवता' के सिद्धान्तों की दुहाई देनेवाले लोगों के लिए ऐसा ही कह सकते हैं। किन्तु इसे वह अपने मुँह से न कह सका। भद्रसेन उत्तेजित अवस्था में दिखाई दिये और यह अवस्था वाद-विवाद के योग्य नहीं रह जाती। उनकी इस अवस्था को देखकर ललित को दुःख हुआ, क्योंकि उसका खयाल था कि जिन भद्रसेन ने उसके पास ऐसा उदार पत्र भेजा था, वे सभी बातों में उदारता को अपनाकर लौटे हैं। उसने देखा कि ऐसा नहीं है और उसने मन ही मन सोचा कि शायद मनु य को विधाता ने बनाया ही ऐसा है कि वह एक सीमा तक ही उदार हो सकता है और जब एक ओर बेहद उदार हो जाता है तो वह दूसरी ओर वैसा ही संकीर्ण भी हो जाता है।

उसने दूसरी बात छेड़ दी। पूछा--क्या आप माल्टा टापू देखने के लिए भी गये थे ?

भद्रसेन--हाँ, और वहाँ से बहुत-से 'माल्टा' फल लाया हूँ। तुमने तो कभी न देखे होंगे--इन फलों की बहुतायत की वजह से उस टापू का नाम माल्टा है। देखो मैं मँगाता हूँ।

उन्होंने उन फलों के लाने को एक 'सहायक' से कहा, फिर कहने लगे--मैं मशीनें बनानेवाले कारखाने भी अपने राज्य में खोलना चाहता हूँ। लोहा, कोयला, तेल, सभी वस्तुओं की इस देश में बहुतायत है। इनकी प्राप्ति के लिए यहाँ पूरा प्रयत्न ही नहीं किया गया। लोहे की चर्खा-मशीनों से एक-एक व्यक्ति दो रुपये रोज़ तक पैदा कर सकेगा।

ललितसेन--तब तो सब यही काम करना चाहेंगे। उससे सामाजिक व्यवस्था की रक्षा कैसे होगी ? अत्यधिक सूत कात लेने पर उसका उपयोग ही क्या होगा ?

भद्रसेन--अभी तो साठ करोड़ रुपयों के कपड़े दूसरे देशों से आ रहे हैं। अत्यधिक का प्रश्न अभी कहाँ ?

ललितसेन--कपड़े आने तो वैसे भी एक साल में बन्द हो सकते हैं, पर हम अपने में वैसी संघटन-शक्ति पैदा कर सकें तब तो ! जब-जब ऐसी शक्ति दिखाई दी, असाधारण काम होता दिखाई दिया। दूसरे देशों की सैकड़ों मिलें जो यहाँ माल भेजने के लिए ही चलती हैं, कुछ समय के लिए बन्द हो गईं।

भद्रसेन--यह बात मैं मानता हूँ कि अनेक दूसरे देशों का व्यापारिक स्वार्थ हमारे संघटन में बाधा डाल देता है, क्योंकि वे देश अपना माल सस्ता भेजकर हमें लालच देते हैं। पर इसके लिए तो उन देशों की इस नीति का अनुकरण करना होगा कि अपने देश की बनी हुई वस्तुओं को लेना ही हम अपना परम कर्तव्य समझें, दूसरे देशों की वस्तुओं को छूना भी पाप मानें !

ललितसेन ने जान लिया कि अभी योरप से लौटने के कारण उनके भाई के दिमाग में वहाँ की उन देशों की तसवीरें नाच रही हैं, जो एक-एक बड़ी रियासत से कहीं छोटे हैं, पर व्यापारिक उन्नति में इस पूरे देश का कान काटते हैं। अपनी अवनति के कारणों को वे भी बहुत कुछ समझ गये थे, किन्तु इस समय उनको सामने लाकर वाद-विवाद करना उन्हें व्यर्थ जान पड़ा।

उन्होंने अपने बारे में सब कुछ बतलाकर कहा--मुझसे आप क्या करने को कहते हैं ?

भद्रसेन ने तुरन्त उत्तर दिया--तुम वहाँ से चले आओ। मेरा पूरी तरह साथ दो। मैं यहाँ के व्यावसायिक संसार में क्रांति करने जा रहा हूँ।

ललितसेन ने देखा कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी छोटी-सी दुनिया बनाकर किस तरह उसे एक अद्भुत रूप दे देता है और उसके सामने सम्पूर्ण संसार को कुछ भी नहीं समझता। उन्हें हँसी आई--वेदना और करुणा से पूर्ण हँसी--पर वे हँस भी नहीं सके। हँसना अभद्रता होती।

वे अब चुपचाप 'माल्टा' फल खाने लगे।

३१

फ़ातिमा को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इला और रोमा--दोनों में उसकी चन्द्रसेन से घनिष्ठता होने की सम्भावना से ही कुछ विरोधी भाव आगया है। ऐसे भाव को उसने केवल तुच्छ ईर्ष्या का फल माना, किन्तु उसे जल्दी ही मालूम हो गया कि वास्तव में यह बात न थी। वे दोनों उससे मन ही मन डर-सी गईं। उन्हें यही भय हुआ कि कहीं फ़ातिमा का चन्द्रसेन पर ऐसा प्रभाव न पड़ जाय कि वे सचमुच अपने देश में जल्दी वापस चले जाने की बात मान लें। रोमा चाहती थी कि वे रोम जावें और इला चाहती थी कि स्विट्ज़रलेंड चलें। परन्तु उन दोनों में से यह कोई नहीं चाहती थी कि वे अपने देश को शीघ्र लौट जायें।

पहले रोमा ने और फिर इला ने यह बात फ़ातिमा से स्पष्ट कह भी दी।

रोमा से यह सुनकर फ़ातिमा हँसी। उसने रोमा से कहा--तुम उन्हें रोम क्यों ले जाना चाहती हो?

रोमा ने इसका उत्तर न देकर कहा--तुम्हें यह बुरा क्यों लगता है?

फ़ातिमा कुछ रुष्ट होकर बोली--मुझे बुरा क्यों लगेगा? बुरा तो तुम्हें लग रहा है कि कहीं मेरी बातों से वे रोम न जावें तो? तुमने ऐसा सोचा ही क्यों कि मैं उनसे कोई ऐसी बात कहूँगी। मैं उनकी प्राइवेट सेक्रेटरी नहीं हूँ, न इला की भाँति उनसे मित्रता रखने का दावा करना चाहती हूँ, या कर सकती हूँ, फिर मैं ऐसे विषय पर उनसे कोई बात क्यों करूँगी?

रोमा--तो बस, इतना ही तो मैं चाहती हूँ। इसमें तुम्हारे नाराज़ होने की तो कोई बात है नहीं। जब वे रोम से चलें, तब तुम जहाँ चाहे वहाँ उन्हें लिवा ले जाना, या तुम्हारा मन चाहे तो उनके साथ उनके देश को ही चली जाना! हो तो तुम दोनों ही एशिया के निवासी!

फ़ातिमा जल-सी उठी। वह बोली--हम लोगों ने कभी ऐसा भाव अपने में उत्पन्न ही नहीं किया, हमेशा आदमियत की बिना पर सबसे मिलने की कोशिश की। लेकिन मुझे तक यह पूरी तरह दिखाई दे रहा है कि अब इस तरह हम रह ही नहीं सकते। अरब ने टर्की से अपनी आज़ादी चाही और पा ली, तब उसे मालूम हो गया कि जो लोग उसको इस कार्य्य में बड़ी हमदर्दी के साथ मदद दे रहे थे उनकी असली मंशा क्या थी। वे उसे आज़ादी दिलाना चाहते थे या टर्की से अलग करके दोनों को कमज़ोर करना। मैं उस खिलाफ़त की तरफ़दार नहीं हूँ। लेकिन उससे जो लोग आपस में जुड़े हुए थे उन्हें जोड़ने के लिए और बाक़ी एशिया के लोगों को भी जोड़ने के लिए अब एक ही तरकीब है और वह यही है कि हम सब अपने को पहले एशियाई समझें, जैसा कि तुम लोग अपने को सबसे पहले योरपियन समझते हो, तब टर्की या फ़ारस, या रूस, या जापान, या चीन या हिन्दुस्तान वग़ैरह में से किसी का!

रोमा ने कहा--अगर हमने भूल की तो तुम लोग वैसी भूल न करो, तभी अच्छा होगा! लेकिन मैं कहती हूँ कि तुम्हारा यह खयाल ग़लत है कि योरप के लोगों में कोई ऐसा मिलानेवाला भाव मौजूद है। अगर ऐसा होता तो दुनिया उन भयंकर लड़ाइयों से बच गई होती जो वहाँ हमेशा से होती आ रही है। जैसे-जैसे तमाम दुनिया में योरप के आदमी बसे और उन्होंने अपना व्यापार बढ़ाया वैसे ही वैसे उनमें आपसी कीना और बुग्ज़ बढ़ते गये! फ़्रांस और स्पेन से पूछकर देखो कि वे अपना पहला बड़प्पन हट जाने के लिए किसे दोष देते हैं?

और भी दुःख के स्वर में वह कहने लगी--पहले स्पेन और फ़्रांस के ही लोग अपनी ताक़त से दूसरी जगह गये थे। उन्हें कितना हटना पड़ा।

तब वह हँसकर बोली--वे जितना हटाये गये थे उनसे अधिक अब सबको फिर हटाने की कोशिश हो रही है। जर्मनी और इटली की

तरफ़ देखो जो दूसरे मुल्कों को अब उन जगहों से हटा देना चाहते हैं जो उनके खयाल के अनुसार उन्हें ही मिलने चाहिए। ये सब योरपियन ही तो हैं।

फ़ातिमा—आपस में तुम लोग चाहे जैसी लड़ाई करते रहो, लेकिन एशियाई मुल्कों को 'रंगीन लोगों' से बसा देखकर उनके खिलाफ़ खड़े होने में मिल जाना योरप के सब देशों के निवासी अपना कर्त्तव्य मानते हो। कितने लोग समय समय पर इस कर्त्तव्य की खुले लफ़्ज़ों में याद दिलाते रहते हैं। इससे कितने ही मुल्कों को काफ़ी हानि पहुँच चुकी है। अगर सब एशियावाले भी एशियाई भाव लाकर और ऐसे संघ बनाकर इस बुरे विचार का उचित विरोध करने को खड़े हो जाते तो ऐसा नुक़सान मुमकिन न होता।

रोमा—यह तो तुम ज़हरीले बीज बोना चाहती हो। दुनिया के सब आदमी एक-से हैं। अगर हमने गोरे-काले में भेद करके ग़लती की तो अब तुम लोगों को वैसा क्यों करना चाहिए? अभी तुमने कहा था कि आदमियत के आधार पर ही दुनिया को आगे बढ़ाया जा सकता है। यही उपाय मैं भी ठीक समझती हूँ।

फ़ातिमा ने व्यंगपूर्ण हँसी हँसते हुए कहा—यह सब हम लोगों को बहकाने और हमें राजनीति की चालों की नागफाँस में फँसाने की बातें हैं। हम लोग भी अब धक्के खाते-खाते और तकलीफ़ें उठाते-उठाते आप लोगों की ऐसी बातों का रहस्य समझने लायक़ हो गये हैं। अब हम ऐसी बातों का यक़ीन कर ही नहीं सकते।

रोमा—यानी अब हम लोगों में सब बुरे और चालबाज़ ही हैं, कोई विश्वास करने योग्य है ही नहीं? इस लोकतंत्र के ज़माने में—

फ़ातिमा लोकतंत्र का नाम सुनते ही अधीर हो उठी। बात काटकर वह कहने लगी—बस करो, फ़ासिस्टी-धारा के लिए जो मुल्क सबसे आगे है उसी मुल्क की होकर जम्हूरियत का नाम लेना अपनी हँसी उड़ाना होगा। यह नाम जनता को और खासकर दूसरे मुल्कों के लोगों को बेवक़ूफ़ बनाने भर के लिए है। जिस हिन्दुस्तान में न जाने कितनी सदियों तक

पंचायत का चारों तरफ़, गाँव गाँव और हर एक बिरादरी में बोलबाला था, वहाँ इसी अजीब तालीम के ज़माने में मुक़दमे की बड़ी अदालतें—ऐसी बड़ी अदालतें—जिनमें जजों को चार-चार और पाँच-पाँच हज़ार रुपये माहवार दिये जाते हैं, क़ायम हुईं। और वे वहाँ की गवर्नमेंट के लिए रुपयों की दृष्टि से टोटे की न होकर फ़ायदेमन्द साबित हुईं। इसी से ज़ाहिर है कि वहाँ की हालत कैसी हो गई है—वहाँ के लोग अपनी सब पंचायतों को छोड़-छाड़कर आपस में लड़-लड़कर अपना समय और धन किस तरह बरबाद करने लगे। एक एक वकील लखपती, करोड़पती होते गये और लड़नेवाले मटियामेट !

रोमा—यह सब तुम्हें चन्द्रसेन ने बतलाया है ?

फ़ातिमा—क्यों, क्या मैं दुनिया के मुल्कों की बावत इतना भी नहीं जानती थी ?

रोमा—क्यों जानतीं ? तुम्हें हिन्दुस्तान की इन बातों से क्या मतलब था ? मैं तो यह सब नहीं जानती। वहाँवाले ऐसे लड़नेवाले हैं तो उनके लिए न्याय का उचित प्रबन्ध होना ही चहिए। उसकी भी तारीफ़ न करके तुम निन्दा करती हो !

फ़ातिमा—तुम्हारे मुल्क ने अबीसीनिया पर हमला करके उस पर जबर्दस्ती क़ब्ज़ा कर लिया और कोई कुछ नहीं बोला, इसी लिए तुम्हें सारी दुनिया हरी-हरी दिखाई दे रही है। लेकिन जिस समुद्र को तुम्हारा देश अपनी झील कहता है उस पर तुम लोगों को जब लड़ाई देखने को मिलेगी तब तुम्हारी राय ऐसी न रह सकेगी। हिन्दुस्तान के साधारण आदमी की औसत आमदनी इतनी कम है कि वह एक जज की एक माह की तनख्वाह दो जन्मों में भी नहीं पा सकता।

रोमा—हमारी लड़ाई के वक़्त जो राय ज़ाहिर की जावेगी वह इससे कहीं तेज होगी—हम इन सबको लुटेरे और डाकू साबित करेंगे। लड़ाई के समय राय हमेशा दूसरी तरह की होती है। लेकिन तुम्हें मेरी किसी

राय से ज़रा भी बुरा न मानना चाहिए। मेरा मुल्क इस्लाम की पूरी रक्षा करना चाहता है।

फ़ातिमा--ख़ुदा हमें ऐसे रक्षकों से बचावे! जो साफ़ साफ़ भक्षक बनकर आता है उससे वैसा नुक़सान नहीं पहुँचता जैसा उससे, जो रक्षक बनने का दम भरता आता है। योरप में इस्लाम की एक रियासत अल्वानिया बची थी उसका आपके मुल्क ने खात्मा कर दिया और अब भी इस्लाम को बचानेवाला ही अपने आपको कह रहा है। धन्य है इस दुस्साहस को!

रोमा--अच्छा, जिस कमाल पाशा ने तुर्की टोपी पहनना ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया, अपने मुल्क की लिपि हटाकर रोमन-लिपि चला दी, क़ुरान के क़ानूनों की जगह स्विट्जरलैंड के क़ानून चलाये--सब कुछ उसके खिलाफ़ किया जिसके बने रहने के लिए हिन्दुस्तान के कट्टर मुसलमान बड़ी तेज़ी दिखाया करते हैं और कहते हैं कि हमारी लिपि और हमारे क़ानून न रह गये तो हमारा मज़हब ही चला जावेगा। हम कहीं के न रहेंगे, बतलाओ वह कमाल पाशा मुसलमान था या नहीं? अगर वह मुसलमान था तो इटली का यह दावा भी वाजिब है।

फ़ातिमा--खूब! कमाल पाशा सच्चे देशभक्त थे, अपने ज़माने की लहरों को समझते थे और जानते थे कि मौलवियों और मुल्लाओं की मज़हबी कट्टरता से उनका मुल्क बची-बचाई ताक़त भी खो बैठेगा। लड़ाई के बाद टर्की के राज्य में एक तिहाई क्षेत्रफल रह गया। ढाई करोड़ से डेढ़ करोड़ आदमी रह गये थे--हिन्दुस्तान के एक-एक सूबे में इससे दुगने-तिगुने लोग हैं। क्या तब भी कमाल उन लोगों में अपने मुल्क की मुहब्बत पैदा करना अपना सबसे बढ़ा-चढ़ा फ़र्ज़ न समझते! उन्होंने 'वतन' अखबार निकाला और 'वतन' पर सबको क़ुर्बान होना चाहिए, यह अपनी ज़िन्दगी के कामों से आखिर तक सिखाया। सारा मुल्क़ तभी हर एक के लिए सच्चा वतन हो सका।

रोमा--लेकिन इस्लामी निगाह से--

फ़ातिमा--इस्लाम को मैं तुमसे कहीं ज़्यादा समझती हूँ--यही इस्लाम है। इस्लाम अपने वतन की, अपने मुल्क की ख़िदमत करने के ख़िलाफ़ नहीं है बल्कि इसका तरफ़दार है। जो ग़रीबों की सेवा करता है, आदमी को आदमियत के लायक़ बनाता है, उसी में सच्ची हिम्मत और सच्चा इस्लामीपन हो सकता है। इस्लाम के माने यही हैं।

रोमा--यही है इस्लाम का मज़हब ? क्या कहती हो ? काफ़िरों को मारना और आपस में भी लड़ते रहना, शिया-सुन्नी वग़ैरह के झगड़े मचाये रहना, किसके काम हैं ?

फ़ातिमा--ताअज्जुब होता है। यह हमारी बदनसीबी है। स्पेन मुल्क से पूछ कर देखो कि उसके लिए इस्लाम ने ज़्यादा भलाई की थी या उसके बाद आनेवाले ईसाई-मत ने ? हमारे ख़िलाफ़ ऐसा बेहूदा प्रचार हुआ है--ऐसा तूफ़ान बरपा किया गया है कि हम लोगों में से भी न जाने कितने उसी को ठीक समझने लगे, उस तूफ़ान में उड़ने लगे। यह तुम लोगों की राजनैतिक शक्ति का करिश्मा है और कुछ नहीं।

रोमा ने उठते हुए कहा--बस, हद हो गई। सब बातों में राजनीति ही राजनीति। अरे, इसे उन मज़हबी लोगों का ही करिश्मा क्यों नहीं मानती हो। मैं तो कोई मज़हब मानती ही नहीं।

इतना कहकर वह तेज़ी से चली गई।

३२

राजकुमार भद्रसेन के लौटने से उनके पिता प्रसन्नसेन को जो प्रसन्नता हो रही थी उसका प्रदर्शन वे एक दरबार करके करना चाहते थे। राज्य के अन्य सरदारों की ऐसी इच्छा थी और लोक मंडल की ओर से भी ऐसा कहा गया था। किन्तु भद्रसेन इसके लिए तैयार न थे। वे कहते थे कि यह जलसा दो मास बाद किया जावे।

उनकी एक तो यही बात उनके पिता को पसन्द न आई थी कि वे ललितसेन को फिर अपने यहाँ बुलाकर उन्हें बहुत बड़े कारबार में लगाना चाहते थे, अब यह जलसे की रुकावट की इच्छा तो उन्हें और भी बुरी मालूम हुई।

उन्होंने दृढ़ता से कहा——हम लोग राज्य करने के लिए पैदा हुए हैं—— व्यापार करने के लिए नहीं। किसी राजा का व्यापार-व्यवसाय में खुद लग जाना बनियापन का काम होगा। उससे कभी किसी को कुछ भी फ़ायदा नहीं हो सकता।

भद्रसेन ने कहा——अब दुनिया में कहीं कोई राजा किसी तरह राज्य करनेवाला नहीं कहा जा सकता। उसका तो नाम भर है। राज्य करने-वाले या तो मन्त्री लोग होते हैं या कोई अधिनायक। लेकिन इनके पीछे असली ताक़त व्यापारी लोगों की है। यह भी कहा जा सकता है कि मन्त्री लोग उन्हीं व्यापारियों के स्वार्थों की रक्षा करने के लिए ही चुने जाते हैं। इस तरह संसार भर में इस समय असली राज्य बड़े-बड़े व्यवसायियों का ही है। हमारे राज्य में न जाने कितनी खदानों का पता लग सकता है और हमारे जंगल से सैकड़ों तरह की चीज़ें तैयार हो सकती हैं। हम इस तरह सोते क्यों रहें? हमें इन सबका इस्तेमाल क्यों न करना चाहिए। मैं तो ललितसेन को ही नहीं, चन्द्रसेन को भी बुलाकर ऐसे ही

कामों में लगाना चाहता हूँ। इससे राज्य के सब बेकारों को भी बेहद काम मिल सकेगा, वे भी ख़ुशहाल हो जायँगे।

प्रसन्नसेन को ऐसा मालूम हुआ मानों भद्रसेन अपने मस्तिष्क को बिलकुल नये साँचे में ढालकर लौटे हैं। योरप में तीन साल रहने से उनमें ऐसी तब्दीली हो जाने का उन्हें शक़ होता तो वे उन्हें वहाँ इतने समय तक रहने ही न देते—कम से कम इस तरह न रहने देते, कुछ और प्रबन्ध किये होते। लेकिन अब क्या हो सकता है?

उन्होंने कहा—राजा-महाराजा को सबसे अधिक ध्यान अपने आत्म-सम्मान का रखना पड़ता है। वे यह कभी नहीं भूल सकते कि उनमें और दूसरे लोगों में—चाहे वे लोग दरबारी ही क्यों न हों—बहुत अन्तर होता है। व्यापार और व्यवसाय में ऐसा ढंग चल ही नहीं सकता, उसमें समय-समय पर न जाने कितना झुकना पड़ता है और बहुत कुछ अपमान चुपचाप भी पी जाना पड़ता है। हम लोग ऐसा कैसे सहन कर सकते हैं?

भद्रसेन को हँसी आई, परन्तु उसे बलपूर्वक दबाकर वे बोले—राजा की शक्ति, जब से इस पृथ्वी पर राजा की हस्ती दिखाई दी तभी से, इसी बात पर निर्भर है कि वे अपने राज्य के सब लोगों को स्वस्थ, शान्त और सुखी रख सकें। लोग उन्हें इसी लिए कर देते हैं कि उससे उनमें अशान्ति पैदा करनेवाले चोर-डाकू आदि तथा तरह-तरह के रोगों, बेकारी और अज्ञान का नाश किया जावे। पहले राजा लोग स्वयं भेष बदलकर जगह-जगह घूमकर देखते थे कि लोगों पर कोई अन्याय तो नहीं करता, उन्हें कोई कष्ट या शिकायत तो नहीं है। राजा में कोई योगी की-सी अद्‌भुत शक्ति तो होती नहीं। जनता से ही उसे फ़ौज के सिपाही और सरदार तथा विज्ञानों के जानने-समझने और काम में लानेवाले लोग मिला करते हैं। फिर वह जनता से ही दूर भागे, या उनसे अपने को बेहद पवित्र, विद्वान् आदि समझ बैठे तो अपनी शक्ति ठीक तरह कैसे बनाये रह सकता है? आपको तो इससे हर्ष होना चाहिए कि मैंने योरप में अपना समय बुरे कामों में या विलासिता

में नष्ट नहीं किया, बल्कि वहाँ के कल-कारखानों को देखा, उनकी कार्य्य-पद्धति का अध्ययन किया और वहाँ से कुछ ऐसी चीजें सीख आया जो सचमुच हमारा उद्धार कर सकती हैं। हम यह साबित कर सकते हैं कि हम भी समय के साथ चलने की योग्यता रखते हैं।

प्रसन्नसेन को भद्रसेन का एक भी वाक्य उचित न मालूम पड़ा। उन्होंने प्रत्येक विचार को नया विचार माना और उसमें उन्हें शान्ति के स्थान पर अशान्ति, सुख की जगह दुःख और उन्नति के बदले अवनति लानेवाले बीज ही दिखाई पड़े। पर उन्होंने इस समय विरोध करना भी उचित न समझा। उन्होंने युक्ति से काम लेना चाहा।

वे बोले—अच्छी बात है, जो कुछ तुम करना चाहते हो, करके देख लो। योरप के मुल्कों में और हम लोगों देश में बहुत अन्तर है, उसे तुम समझ नहीं पाये हो। लेकिन उसे समझने के लिए अगर ऐसा काम करना पड़े तब भी कोई खास बुराई नहीं हो सकती। तुम अपनी पूरी योजना तैयार कर लो। उसके लिए जिन-जिन लोगों से मिलना-जुलना चाहो, मिल आओ। मैं तुम्हें रोकना नहीं चाहता। मेरी तो अब वृद्धावस्था आ रही है। अब मैं एकान्त में बैठकर राम का नाम लेना चाहता हूँ और उनके चरणों में परम शान्ति पाना चाहता हूँ।

भद्रसेन—यह शान्ति भी आप अपने राज्य के सब लोगों को सुखी करने की सच्ची कोशिश में बहुत आसानी से पा सकेंगे। कोई पिता यह नहीं चाहता कि उसका नाम रटा जावे, उसकी सन्तानों की तकलीफ़ों को दूर न किया जावे। उस परम पिता का भी यह नियम अवश्य होगा कि जो उसकी सन्तानों को सुखी और शान्त करने का प्रयत्न करे वही स्वयं भी सच्ची शान्ति और सच्चे सुख का अधिकारी बन सके।

प्रसन्नसेन जोर से हँसकर बोले—तुम नबी भी हो आये हो!

भद्रसेन—इसमें नबी, अवतार या महात्मा बनने की कोई बात नहीं है। यह तो साधारण बुद्धि की ही बात है। अगर आप योरप के लोगों से अपने इस तरह हरि-नाम लेने और हरिचरणों में लगने के प्रति बेहद

नफ़रत दिखानेवाली और हमें बिलकुल बुद्धू प्रकट करनेवाली विकराल हँसी सुनते तो आप ऐसी बात कभी कही न सकते।

प्रसन्नसेन--तो अब हमें उन लोगों की तरह तैल, लोहे, पिट-रोल, रबर, टीन, रेशम, ऊन, जूट, गेहूँ, चाय आदि की ही रात-दिन चिन्ता करनी चाहिए।

भद्रसेन--इनकी नहीं, इनके व्यापार पर अपने मुल्क का क़ब्ज़ा होने की। जो मुल्क इन सब पर जितना अधिक आधिपत्य रखता है वह सारी दुनिया पर अपनी उतनी ही ज़्यादा धाक जमाये रह सकता है। कनाडा का गेहूँ में दुनिया भर में पहला नम्बर है, अमरीका का मोटरकार में और हिन्दुस्तान का चाय में। बतलाइए, क्या यही होना चाहिए? और चाय से हमारा लाभ कितना है? मैंने तो चाय पीना बिलकुल छोड़ दिया। अब वह मेरे गले के नीचे उतर ही नहीं सकती। मैं सभी राजाओं-महाराजाओं से ऐसी पूँजी इकट्ठी करूँगा और उनसे अपने सब साधनों का ऐसा पूरा उपयोग करने की ज़ोरदार प्रार्थना करूँगा कि दूसरे मुल्कों के धन-कुबेर भी हमसे हार मान जायेंगे। हम ऐसा कर सकते हैं। और मैं ऐसा ज़रूर करूँगा।

प्रसन्नसेन--तुम्हीं ऐसा क्यों करोगे? जो रियासत सबसे बड़ी हो, या जिसके साधन सबसे अधिक हों, उसे ही ऐसा करना चाहिए। मान लो कि जैसा संगठन तुम चाहते हो वैसा यदि हो भी जाय तो उसमें तुम्हारा कोई स्थान होना ज़रूरी नहीं--शायद तुम्हें कोई पूछे भी नहीं।

भद्रसेन--इसकी मुझे परवा नहीं। मैं अपना काम कर चुकूँ यानी ऐसा संगठन हो जावे, फिर मुझे कोई पूछे या न पूछे, मुझे इससे विशेष सुख-दुख न होगा। वैसे मेरा यह विश्वास है कि जो सच्चाई के साथ ऐसा काम करेगा उसे सभी पूछेंगे। जो लोग कृष्णकुमार आदि की ओर न केवल प्रशंसा की दृष्टि से देख रहे हैं बल्कि उनकी बातें मानकर अनेक कष्ट सहने को भी तैयार हो जाते हैं, वे लोग ऐसे व्यक्ति को भी अवश्य अपनावेंगे। इस तरह हम वह काम कर सकेंगे जिसके न करने से हम किसी काम के

लायक़ न रह जावेंगे और संभव है कि जनता फिर किसी भी दशा में हमारा साथ देने को तैयार न हो।

प्रसन्नसेन--मुझे नहीं मालूम कि किन लोगों और किन किताबों का तुम्हारे दिमाग़ पर ऐसा अजीब असर पड़ा है, लेकिन अब मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि व्यवहार-बुद्धि छोड़कर तुम स्वप्न देख रहे हो--स्वप्न! अगर तुम अर्थ-नीति की जटिलतायें जानते होते तो समझ लेते कि इस समय के संसार में केवल रुपयों के बल पर को‌ई व्यापार नहीं चलाया जा सकता। न जाने कितनी कम्पनियाँ दिवालिया हो गईं--और किसी बेईमानी की वजह से नहीं, बल्कि उन कारणों से, जिन पर उनका कुछ भी नियन्त्रण नहीं हो सकता था, उन्हें ऐसी अवस्था को प्राप्त होना पड़ा।

भद्रसेन--यह मैं भी जानता हूँ, लेकिन--

प्रसन्नसेन--लेकिन नहीं, तुम्हारी सभी धारणायें बिलकुल एकांगी हैं। तुम कहते हो कि योरप में राजनीति के पीछे बड़े बड़े व्यापारियों का ही हाथ है, लेकिन ऐसा होता तो ये सभी लोग आपस में मिलकर एशिया, अफ़्रीका आदि की व्यापारिक लूट की ही योजनायें बनाते, पर असल में वहाँ के हर एक देश--ख़ास कर--जर्मनी और इटली-अपना सामरिक आधिपत्य फैलाना चाहते हैं और इसलिए जिनका राज्य दूसरी जगहों पर है, उनसे वे लड़ना चाहते हैं। इन लोगों में व्यापार की नहीं, लड़कर विजय प्राप्त करने की प्रेरणा काम कर रही है। ये लोग संसार की शान्ति की बातों को ढोंगी और बहकानेवाली बातें कहते हैं और अशान्ति की ही ज़रूरत सच्ची ज़िन्दगी बने रहने के लिए मानते हैं। दुनिया में किसी राज्य के मन्त्रियों का ज़ोर उतना नहीं बढ़ रहा है जितना इन राज्यों के अधिनायकों का। एक तन्त्री ढंग होने से उनके यहाँ बेहद तेज़ी से सब काम होते हैं। हमें भी किसी दिन उनका सामना करना ही पड़ेगा।

भद्रसेन--आपकी ये बातें मानकर भी तो हमें अपने ऐसे उद्योग में तुरन्त लग जाना चाहिए। लड़ाई में जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है उनकी संख्या चालीस हज़ार के क़रीब है। इनमें आधी से भी कम इस मुल्क में

अभी बन सकती हैं। इस समय इनमें से भी बन कितनी रही है? सुई, बटन, खिलौने, सिगरेट तक तो हम लाखों रुपयों के दूसरे मुल्कों से लेते हैं! अपने तन का कपड़ा तक तैयार नहीं कर पाते! कई करोड़ रुपयों की रूई देकर दूसरों से कपड़े लेते हैं। अगर ये सब चीज़ें हम बना सकें तो हमें कितना लाभ हो। पहले सभी कपड़े हम अपने लिए बनाते थे और दूसरे मुल्कों को भी भेजते थे। हमारे यहाँ के किसान छः माह तक बेकार ही रहते हैं, इसलिए समय की कमी तो है ही नहीं, काम की ही कमी है। यहाँ तो अगर मशीनों की जगह साठ लाख गाँवों में चर्खों से भी काम लिया जा सकता तो कपड़ों के लिए दूसरे मुल्कों में साठ करोड़ रुपये न भेजने पड़ते। इतनी रक़म थोड़ी तो नहीं है। इससे कितने लोगों का अच्छी तरह काम चल सकता है।

अब प्रसन्नसेन के लिए अधिक सुनना असंभव हो गया। एक राजकुमार चर्खे चलाने की चिन्ता करे। इससे कुल मुल्क को करोड़ों नहीं, अरबों रुपयों की भी बचत हो सके तो उससे क्या? उसकी आत्म-प्रतिष्ठा कैसे क़ायम रह सकती है अगर वह ऐसी बातों में लग जावे और ऐसे कामों को अपने काम करने में कुछ संकोच तक न करे? यही सोचकर वे उठ खड़े हुए।

बोले—मैं तुम्हारी योजनाओं को काल्पनिक ही कह सकता हूँ। सब हवाई महल है। लेकिन मैं तुम्हें कुछ कामों के करने में पूरी मदद दूँगा। लड़ाई के अवसर पर जिस सामान की आवश्यकता होती है उसे जहाँ तक तैयार किया जा सकता है उसे ही तैयार करना तुम पहले प्रारम्भ करो। हम लोगों को वे ही काम करने-कराने चाहिए जो हमारी पद-मर्यादा के अनुकूल हों। साधारण व्यापार के कामों में लगना क्या हमें शोभा दे सकता है?

इतना कहकर वे धीरे-धीरे वहाँ से चले गये।

भद्रसेन ने समझ लिया कि उनका पथ कैसा कंटकाकीर्ण है। उन्होंने तार भेजकर चन्द्रसेन को वापस बुलाने का निश्चय किया और इस निश्चय को तुरन्त कार्य में परिणत करने के लिए एक सहायक को बुलवाया।

३३

प्रसन्नसेन ने अखिल भारतीय कीर्तन-मंडली का मुख्य संरक्षक होना स्वीकार किया। तब से कीर्तन के बहाने तरह-तरह के संगीतज्ञ और नृत्य-कला-विशारद लोग उनके यहाँ पहुँचने लगे। इतना ही नहीं, उन्होंने थोड़े समय में ही देखा कि हरि-नाम के बहाने राधाकृष्ण आदि की ऐसी-ऐसी कथायें कही जाती हैं और ऐसे-ऐसे हाव-भाव प्रकट किये जाते हैं कि उनके मन की वृद्धावस्था की स्वाभाविक शान्ति भी अशान्ति में परिणत हो सकती है। धर्म के नाम पर शिव-पार्वती आदि के तरह-तरह के अर्धनग्न चित्रों की भी उन्होंने बहुलता देखी और इन सबसे बढ़कर देखा इस कीर्तन और धर्म का स्वांग भरनेवालों की विलासप्रियता, उत्तप्त वासना और उनमें अहंकार की उग्रता।

कौन कैसा अच्छा गाता है, किसकी ध्वनि में विशेष आकर्षण है और किसका कौन राग मन के विराग को दूर करने में समर्थ हो जाता है, यही सब चर्चायें वहाँ चल खड़ी हुईं। स्वादिष्ठ पदार्थों की भी इन सब 'भक्तों' को परम चाह थी। उनकी तैयारी और आलोचना में उन्हें भक्ति-रस से कम रस मिलता था, ऐसा कोई नहीं कह सकता।

उनकी एक ओर कीर्ति बढ़ी और दूसरी ओर उससे कहीं बढ़ी-चढ़ी अपकीर्ति। कुछ लोग तो यहाँ तक आगे बढ़ गये कि वे इस मंडली में सम्मिलित होना प्रेमियों और प्रेमिकाओं के मिलन का सबसे बढ़िया ढंग कहने लगे। वे इसके एक नहीं अनेक प्रमाण भी देने को तैयार थे और वे प्रमाण अनुमान पर अवलम्बित नहीं थे--'प्रत्यक्ष प्रमाण' थे।

फिर भी एक बार इस दलदल में फँसकर उससे निकलने का साहस प्रसन्नसेन न कर सके। उन्हें उसके कुछ संचालकों के प्रति मोह हो गया। वे सब उनकी ऐसी प्रशंसायें करते और लिखते थे, उनके ऐसे-ऐसे चित्र

समाचार-पत्रों में प्रकाशित करवाते थे और ऐसे-ऐसे 'महात्माओं' को उनके पास लिवा लाते थे कि उन्हें इस सब में बुराई दिखाई देने पर भी इनके प्रति अनिवार्य आकर्षण जान पड़ने लगा।

एक दिन उन्होंने सुना कि योरप से एक नवीन देवी का इस देश में फिर आगमन होनेवाला है और वे अब इस रूप में आ रही हैं कि लाखों की संख्या में जनता उनका जगह-जगह स्वागत करेगी। उनमें किसी परम पवित्रात्मा की विभूतियों का विशेष आविर्भाव कोई माने या न माने, किन्तु उनकी वक्तृता की धारा में स्थिर रह जाना किसी के लिए संभव न होगा। सभी प्रकार के धार्मिक संघ उनके स्वागत की तैयारी में लग गये। वे सभी धर्मों की अपने आपको बतलाती थीं और प्रत्येक धर्म के आचार्यों के जीवन की तथा उनके मुख्य सिद्धान्तों की ऐसी व्याख्या और विवेचना करती थीं कि लोग स्तब्ध रह जाते थे। फिर उनका स्वागत करना प्रत्येक धर्मवाले अपना कर्त्तव्य क्यों न समझते ?

किन्तु इतना ही न था। जो लोग अपने को अवतार, ईश्वर-दूत आदि प्रसिद्ध कर रहे थे, उनमें भी उनके आगमन के समाचार से बेचैनी नहीं बढ़ी बल्कि उन्हें एक नया बल मिला, क्योंकि इन देवी जी ने इस नवीन सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था कि इस बार कोई पूर्ण अवतार न होकर अनेक अंशावतारों या देवदूतों के संघों से संसार-सुधार का कार्य होगा, जिससे संघों की शक्ति में लोगों का विश्वास हो सके। प्रसन्नसेन इस समय तक 'राजर्षि' से 'अंशावतार' तक बनाये जा चुके थे। अगर संभव होता तो वे पूर्णावतार भी घोषित कर दिये जाते, पर ऐसा किसी तरह न हो सकता था। फिर भी आधुनिक विज्ञान के साधनों से जितनी 'दिव्य' शक्ति प्राप्त हो सकती है वह सब उन्हें मिली हुई थी और उससे साधारण जनता जब तब विशेषरूप से भौंचक रह जाती थी, खासकर जब वे कभी जर्मनी की राजधानी बर्लिन में बोलते हुए व्यक्तियों के भाषण या गीत सुनवाते और फिर तुरन्त 'योग-बल' से इटली की राजधानी रोम या इँगलैंड की राजधानी लंदन के भाषण या गीत सुनवाने लगते।

कितने लोग 'रेडियो-सेट' का नाम जानते या उसका यह करिश्मा समझ लेते।

प्रसन्नसेन देख रहे थे कि उन्हें कितनी धूर्तता के आसन पर बैठाला जा रहा है, फिर भी वे प्रसन्न थे। अब वे अपने मन को यह कहकर समझा लेते थे कि सभी बड़े संघों में कुछ न कुछ ऐसी बातें आवश्यक या अनिवार्य होती हैं। जनता की श्रद्धा ही मुख्य वस्तु है। अंधविश्वास कोई बुराई नहीं, बल्कि सबसे बड़ा गुण है, क्योंकि असली लाभ उसी से होता है। केवल धार्मिक ही नहीं, राजनीति के, साम्यवाद, लोकतंत्र आदि आदि के दलों में भी कम धूर्तता या धोखेबाज़ी नही चलती। कृष्ण और राधा के नाम से न सही, प्रकृति और स्वाभाविक प्रेम आदि के नाम से सब में मनमानी अनीतियाँ जारी हैं। संघों में सब तरह के लोग आवेंगे ही। उन्हें परीक्षाओं की शाला में तो बैठाया नहीं जा सकता। आपस में भी मित्रों के अनेक अपराधों और पापों को दर गुज़र करना ही पड़ता है! यदि ऐसा न किया जाय तो कोई संघ चल नहीं सकता। सभी ऐसा कर रहे हैं। हाँ, न्याय और सत्य के नाम पर दो-चार असमर्थ लोगों को दंडित कर देना भी जरूरी होता है। मैं भी ऐसा जब चाहूँ तब कर सकता हूँ!

उन्हें राज्य-पद से भी यह पद श्रेष्टतर मालूम होने लगा, क्योंकि इसमें झंझटें और उत्तरदायित्व कहीं कम तथा धाक और शान कहीं अधिक थी। लोगों से पूज्यभाव पाने, तथा सबको अपना भक्त बना लेने में ही असली आनन्द है, इस पर अब उनका विश्वास हो रहा था।

अन्त में उस देवी का जहाज़ बम्बई आगया। प्रसन्नसेन दल-बल-सहित बम्बई में मौजूद थे। जनता उमड़ी पड़ती थी।

सायंकाल सभा हुई। सभी लोग मंत्रमुग्ध-से हो गये। ऐसी 'ओजस्वी और सारगभित' वक्तृता, उन्हें जान पड़ता था, कभी सुनने को न मिली थी। किन्तु प्रसन्नसेन पर उस समय बिजली-सी गिर पड़ी जब उन्होंने देखा कि उस देवी के भाषण के बाद जो युवक बोलने के लिए खड़ा हुआ वह और कोई नहीं, स्वयं चन्द्रसेन था——राजकुमार चन्द्रसेन।

लोगों ने राजकुमार के भाषण को भी बेहद चाव से सुना और कई बार करतल-ध्वनि भी की, किन्तु प्रसन्नसेन उस भाषण को कुछ न समझ सके, क्योंकि वे ऐसी अवस्था में रह ही न गये थे। वे सोचते थे--तो क्या यह देवी वही इला है ? योरप जाकर मेरा बड़ा लड़का ऐसा बन आया कि उसने राज्य का तमाम रुपया तरह-तरह के मनमाने कारखानों में लगा दिया है और अब यह मेरा दूसरा लड़का ऐसा बनकर लौट रहा है ? जनता तो अंधी होती है। कई स्त्रियाँ समाज में ऐसी हैं जो इला से भी विचित्रतर ज़िन्दगी व्यतीत कर चुकी हैं, पर जनता में उन्हें आदर का स्थान पाने में कठिनाई नहीं, पुरुषों में तो ऐसे कहीं अधिक हैं। लेकिन मैं इसे कैसे सहन कर सकूंगा ? मेरे लिए तो यह ज्रपात से भी बढ़कर है। क्या मेरा सचमुच ऐसा ही भयंकर भविष्य है ?

३४

देश में लौट आने के बाद चन्द्रसेन का मन इलादेवी के इन व्याख्यानों तक परिमित धर्म-पथ से हटकर व्यावहारिक मार्ग की खोज के लिए छटपटाने लगा। उसने अपने मन की अवस्था इला से बतलाई, पर इला ने उस पर हँसते हुए कहा––आपके मन की कमज़ोरी मैंने जहाज़ पर चढ़ते ही देख ली थी। वह कमज़ोरी बराबर बढ़ती गई। अगर कोगाको को आप अपना सच्चा मित्र न मान लेते तो शायद आप कहीं न कहीं समुद्र में ही कूद पड़ते। और आख़िर कोगाको आपको और उस रोमा तक को इस तरह छोड़कर चला गया मानो उससे और आप लोगों से कभी कुछ परिचय ही न रहा हो। 'मुझे लड़ाई पर जाना है' यही एक वाक्य उसके लिए सब कुछ हो गया। यही जापानी स्वभाव की विशेषता है। उसके चले जाने पर आप कुछ होश में आये। तभी आप मेरी योजना समझ भी सके और कुछ हद तक उसको कार्य्यरूप देने में मेरा साथ भी दे सके। अब अपने मुल्क आकर अपने पिता को मेरे इसी रास्ते में देखकर भी आप इससे भागना चाहते हैं। यह आपके मन की सबसे ज्यादा कमज़ोरी है। अब तो आपको मुझसे घबराना न चाहिए। क्या मुझे, रोमा और फ़ातिमा को छोड़कर आप नई देवियों की तलाश में लगना चाहते हैं?

यह सुनते ही चन्द्रसेन ने अद्भुत काम किया–––वह अपना मुँह पीटने लगा।

इला एक मिनट तक देखती रही; बाद को उनके दोनों हाथ पकड़ कर वह बोली––क्या आप पागल हो रहे हैं?

चन्द्रसेन ने कहा––वही बेहतर होता। आदमी कभी सचमुच सुधर भी सकता है, या सुधरने के लिए बेवस हो सकता है, यह तुम अभी न समझ सकती हो, न मान सकती हो। लेकिन इतने समय के बीच में जो कुछ

मेरे ऊपर बीता है वह एक ज़िन्दगी के अनुभव से भी अधिक जान पड़ता है। मैंने तुमसे कई बार कहा है और अब फिर कहता हूँ कि जहाज़ पर जाते ही मेरी ज़िन्दगी का सचमुच एक नया परदा उठा। बाहरी दुनिया से अपनी आँखें हटाकर अपनी ओर देखने को मैं मजबूर हो गया और अपनी ओर देखते ही मैं चिल्लाये विना न रह सका।

इला—वह तो सब हो गया। जितना चिल्लाना था, आप जहाज पर ही चिल्ला चुके थे, फिर उसके बाद भी कुछ कम नहीं चिल्लाये। स्विट्ज़र-लैंड में मैंने समझा था कि आपकी तबीअत बिलकुल ठीक हो गई, पर वहाँ भी बीच-बीच में आपकी अस्वाभाविक या स्वाभाविक कमजोरी प्रकट हुई। अपने भाई के तार पर तार न पाते तो शायद आप इस समय भी न लौटते। पहले तो आप यहाँ से जाना ही न चाहते थे, या फिर लौटना ही कठिन हो गया था। अच्छा क्या आपके बड़े भाई या छोटे भाई ने आपसे कोई ऐसी बात कभी कही है जिससे आप हमारे रास्ते से भागकर कुछ और करना चाहते हैं? इस मुँह पीटने के माने क्या हैं?

चन्द्रसेन—क्या इस बात की जरूरत है कि मेरे कोई भाई मुझे कुछ अपने मुँह से कहें तभी मैं अपनी अवस्था समझ सकूँ? मेरे बड़े भाई ने मुझे जिस काम के लिए बुलाया है, उसे तुम खुद कुछ देख चुकी हो। उनकी इच्छा किसी से छिपी नहीं है। वे अपने सर्वस्व की बाजी अपने काम में लगा चुके हैं। मेरे छोटे भाई ललित ने भी उसी में अपने को लगा दिया है। उसने दूसरे राजा के राज्य की बनिस्बत अपने इस काम की सफलता को श्रेष्ठतर समझा है। मेरे पिता इसमें नहीं लग सकते। लेकिन अगर इसमें कुछ कामयाबी हो गई तो वे इस तरह अलग भी न रहेंगे। वे इस काम को अपनी मर्य्यादा के विरुद्ध मानने के जो कारण बतलाते हैं वे सब तो हम लोगों को तनिक भी प्रभावित नहीं कर पाते। कट्टर वर्ण-व्यवस्था हमें मूर्खता की पराकाष्ठा जान पड़ती है। उससे हमें बेहद हानि हुई। एक ही जाति या वंश बुद्धि, शौर्य या व्यापार का अपने को ठेकेदार मान लें तो मुल्क की बाढ़ रुकने में शक ही किसे हो सकता है। यही हुआ।

Love is Blind

बुद्धि के ठेकेदारों ने बुद्धि का दुरुपयोग किया और प्रकृति के नियमानुसार, एक समय के बाद, बुद्धिमानों के बुद्धिहीन सन्तानें होने लगीं। इसलिए उनका स्थान लेनेवालों में भी ऐसे लोग बढ़ते गये। शौर्य और वीरता के ठेकेदार भी ठहर न सके। शस्त्रों और शास्त्रों की समयानुसार नवीनता ही मनुष्यों की रक्षा करती है। दोनों से हम हीन हो गये। नियम टूटे पर बड़ी बाधाओं के बीच और इसी लिए बहुत थोड़े क्षेत्र में सिक्ख लोगों ने इस जाति-पाँति को तोड़कर सच्ची वीरता पाई। शेष सब लोग सड़ते रहे। मेरे पिता को उसी सड़न की दुर्गन्धि का अभिमान है। और तुम मुझे अब भी बेहद पतित समझती हो!

इला—यह सब आप क्या कह रहे हैं? यदि मुझे सबसे बड़ी देवी मानकर सारा संसार पूजने लगे तब भी मैं यह न भूलूँगी कि मेरे देवता हैं आप। क्या आप यह सोचते हैं कि आपकी इस हालत से मैंने कुछ नहीं सीखा? ऐसी बात नहीं है। ऐसा हो ही नहीं सकता था। मैं चाहती—चाहे जितना चाहती—तो भी यह हो न सकता। जिस किसी के इतने निकट उसके इतने प्रिय पर ऐसी आपत्ति आ जावेगी वह उस विपत्ति का असर अपने मन पर पावेगा ही। मैं दुनिया के कितने ही ऐयाशों और पतित लोगों को जानती हूँ जो जन्म भर बुरे बने रहे और बुराई को पाप कहने पर हँसते रहे। लेकिन आपकी अवस्था देखकर मेरी निगाहें भी उन लोगों की ओर गईं, जिन्हें तरह-तरह से इसी संसार में अपमानित और दंडित होना पड़ा है और जो आपकी ही तरह यह चिल्लाने को विवश हो गये कि उनकी वह अवस्था उनके ही कुकर्मों के फलस्वरूप हुई थी। इसी से मैं भी इस प्रायश्चित्त-पथ पर सहर्ष चल रही हूँ!

चन्द्रसेन ने एक ध्यानपूर्ण दृष्टि इला के मुख पर डाली, मानो यह देख लेना चाहता हो कि उस पर सच्चाई के कुछ चिन्ह हैं या नहीं। पर मनुष्य का मुख देखकर इसका ठीक-ठीक पता लगा लेने का दावा कौन कर सकता है? चन्द्रसेन को तो इसमें अपनी असफलता ही दिखाई दी।

उसने कहा—कैसा अच्छा होता, अगर कोई ऐसा यंत्र भी बना

होता जिससे हम असत्य बोल ही न सकते। इतना ही हो जाय तो सारे संसार की सब बुराइयाँ हट जावें। मैं तुमसे साफ़ साफ़ कहता हूँ कि अगर मुझे तुम्हारी इस बात का विश्वास हो जाय कि तुम इस रास्ते पर सचमुच प्रायश्चित्त के लिए चलती हो तो मैं तुम्हारा साथ दे सकूँ या न दे सकूँ, लेकिन मेरे मन की अशान्ति बहुत कुछ दूर हो जावे। पर मुझे तो पूरा शक़ है कि तुम अब भी अपने मुल्क का ही काम कर रही हो। तुम्हें वहाँ के लोगों ने, जहाँ तक मैं समझ सका हूँ, सिर्फ़ इसलिए नहीं पकड़ा कि तुमने उनसे उनका काम करने का वादा कर लिया।

इला—आपकी तरह का यदि स्वभाव मेरा भी हो गया होता तो अब मेरे मुँह पीटने की बारी होती। यह आपका अत्याचार है कि आप मेरे बारे में ऐसा सोचते हैं। मेरे मुल्क में दोनों विरोधी दल मिलकर इस समय एक हो गये हैं। अब उन सबमें एक ही महत्त्वाकांक्षा है। इसी लिए उन्होंने मुझे पकड़ना व्यर्थ समझा। मैं आपसे इस बारे में कभी झूठ नहीं बोली, मैं आपसे झूठ बोल ही नहीं सकती। जिसे पहले पहल देखते ही मैं अपना सम्पूर्ण देवीत्व भूल गई, उससे मेरा असत्य का सम्बन्ध नहीं है।

चन्द्रसेन की नज़र ऊपर न उठी। उसे जान पड़ा, अब फिर उसकी ओर देखना स्वभाव की नीचता होगी।

उसने कहा—जब मैं यह सब मान लूँ, तब भी तुम यह कैसे कह सकती हो कि तुम उसी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति का एक साधन नहीं बनाई जा रही हो?

इला ने ज़ोर से हँसकर कहा—इतना बड़ा अभिमान मैं कभी नहीं कर सकती। उन्हें मुझ-जैसी स्त्री को साधन बनाने की ज़रूरत ही क्या है? और अगर ज़रूरत हो तब भी मैं वैसा कभी नहीं बन सकती। जिनका देश स्वतंत्र और शक्तिशाली है उन्हें उसकी शक्ति बढ़ाने की ही चिन्ता में लगना उसे अशक्ति की ओर ले जाने का सहज कारण भी

हो जाता है। सभी को उनसे ईर्ष्या हो जाती है। उनको अपने वास्तविक लाभ के लिए भी अन्य देशों का, जिन्हें वैसी शक्ति नहीं मिली है, पूरा सहयोग देना चाहिए। मैं तो यह मानती हूँ कि कुछ लोगों को इतना ऊँचा उठना चाहिए कि वे अपने मुल्क की तात्कालिक हानि करके भी दूसरों को लाभ पहुँचाने पर उतारू हो जावें। उनके देशवाले यदि उन्हें दंडित करें तो भी उन्हें चाहिए कि वे सहन कर लें।

चन्द्रसेन--तुम अपने को ऐसा ही समझती हो ?

इला--मैं ? मैं तो अपने को देवी समझती हूँ। करोड़ों में से किसी एक को मानवीय पदों से हटाकर देवीत्व के पद पर स्थापित होने का सच्चा सुअवसर मिलता है। अगर उसमें त्याग और उच्चता की शक्ति होगी तो वह वहाँ ठहरेगी नहीं तो नीचे घसीट ली जावेगी, या स्वयं गिर पड़ेगी। पहली बार मैं भी गिर पड़ी या घसीट ली गई। इस बार इस साधना में मैं अपनी पूरी शक्ति लगा दूँगी। इससे आप भी सच्ची शान्ति और उचित कर्त्तव्य-क्षेत्र पा जावेंगे और मैं भी सभी व्यक्तियों को--संसार भर के सब लोगों को—वैसे ही प्रेम से देख सकूँ जैसा एक साधारण व्यक्ति को अपने प्राणों से होता है, यही मैं चाहती हूँ और इसमें मैं सफल होऊँगी। सब धर्मों का समन्वय व्यावहारिक क्षेत्र में करके और उसे अपने जीवन में दिखलाकर मैं कृतकार्य हो जाऊँगी।

चन्द्रसेन--ये सब सुन्दर स्वप्न की कल्पनायें हैं। आज तक कोई ऐसा कर सका है ? तुम्हारी तपस्या ही क्या है ? तुम्हारा जीवन तो ऐसा नहीं रहा कि तुम अपने को ऐसा स्वप्न देखने की अधिकारिणी भी समझो !

इला--संसार में कई बार वैसी धारा प्रबल वेग से वह चुकी है, जैसी मैं वहाना चाहती हूँ। इस समय भी उसकी कुछ कम तैयारी नहीं हो रही है। सब मेरा ही रास्ता देख रहे हैं। यह सच है कि दुनिया से बुराइयाँ मिट न जावेंगी, लेकिन उनमें काफ़ी कमी आ सकती है। कम से कम

यह तो हो सकता है कि हम उनमें शान न समझेंगे, बल्कि अपनी कमज़ोरी देखने लगेंगे।

चन्द्रसेन--तुम्हारी पहली जिन्दगी--

बीच में ही यह बात काटकर इला ने कहा--आप बच्चों की तरह 'पहली ज़िन्दगी' या 'अनधिकार' की बातें क्यों कहते हैं ? इस दुनिया में जितने महात्मा, नेता या बड़े शासक हुए हैं, उनमें से अधिकांश की पहली ज़िन्दगी कैसी थी ? कितनों ही का जीवन तो पतित से पतित नायक की कहानी को भी मात दे देनेवाला हुआ है। तब क्या मैं ही निराश हो जाऊँ और आपकी तरह सिर पीटने या पटकने को ठीक मानकर इसी तरह अपनी बाक़ी ज़िन्दगी बिताने का निश्चय करूँ ?

चन्द्रसेन--जो निश्चय करना था वह तो तुम कर ही चुकी हो। तुम्हारे इस निश्चय में मेरा भी हाथ था, इसलिए तुम्हें मेरे ऊपर व्यंगवाण न छोड़ने चाहिए। जिन विदुषी स्त्रियों और विद्वान् पुरुषों से मैं तुम्हारे साथ रहकर मिला उनमें से किसी को मैंने ऐसा स्वप्न देखते नहीं पाया, इसी लिए मैं सोचता हूँ कि कहीं यश-लिप्सा ने सीमा से पार होकर तुम्हारे मन में एक प्रकार के रोग का रूप न धारण कर लिया हो।

इला फिर हँसी। वह बोली--अच्छा, तो आप इसे मेरा रोग समझते हैं ? सुना था कि कुछ डाक्टरों के अनुसार देशभक्ति, ईश्वरभक्ति आदि सब भयानक रोगों के ही चिह्न या फल हैं। जान पड़ता है उन्हीं के साथी आप भी हो रहे हैं। यश से भागने या घबरानेवाले ही असल में रोगी होते हैं। क्या मैं अस्वस्थ हूँ ?

चन्द्रसेन--हाँ, सचमुच यही बात है। स्वस्थ विकास का सुपथ जैसा होना चाहिए, वैसा करोड़ों में से दो-चार व्यक्तियों को भी मिल जाय तो बहुत है। उसके योग्य हम-तुममें से कोई नहीं है।

इला--तो फिर इन शेष आदमियों को रोने-चिल्लाने और पशुओं की तरह ज़िन्दगी बिताने के सिवा कोई ऊँची बात सोचने या श्रेष्ठ काम करने का अधिकार है ही नहीं ? यही आपका फ़तवा है ? आप नहीं

जानते कि असली नाम सब जगह साधारण लोगों के मन की श्रेष्ठता से ही होता है।

चन्द्रसेन——यह मैं जानता हूँ। पर तुम तो अपने को साधारण समझकर यह काम कर नहीं रही हो ? जो हो, मैं अपना भविष्य जीवन बहुत ही साधारण ढंग से बिताना चाहता हूँ।

इला——वही तो——आप साफ-साफ़ क्यों नहीं कहते कि अब हम लोगों का कुछ भी साथ देने की आपकी इच्छा नहीं है। देखिए, अगर साल दो-साल भी आप हमारा साथ और दे सकें तो हमें अपने कार्य-क्षेत्र को ऐसा बना लेने का दावा है कि फिर आप हमारा तनिक भी साथ न दें तो हमें आपत्ति न होगी। पर प्रारम्भ में सभी को राजकुमार जैसे लोगों के पद और राजाओं जैसे लोगों के धन की ज़रूरत ऐसे महान् कामों के लिए होती है।

चन्द्रसेन——मैं तुम्हें सहायता देता रहूँगा, पर मेरा जीवन-क्रम आज से बदल जावेगा। मैं तुम्हारे साथ कहीं न जाऊँगा।

इला को सचमुच ऐसा क्रोध आया कि वह उसे अपने किसी साथी पर उतारे बिना नहीं रह सकती। कदाचित् इसी कारण वहाँ से भीतर जाकर उसने अपने एक कुत्ते को पीटना शुरू कर दिया।

कुछ लोगों ने उसके इस काम से समझ लिया कि उसकी राजकुमार से कड़ी से कड़ी बातें हुई हैं। वे कई दिन से राजकुमार के मन की अस्थिरता और चिन्ता पर तरह तरह की बातें आपस में किया करते थे।

दूसरे दिन उन सबने सुना कि चन्द्रसेन कहीं बाहर चले गये हैं। कहाँ गये, यह किसी को नहीं बता गये।

यह सुनते ही इला की आँखें लाल हो गईं और उसका हृदय एक अव्यक्त वेदना से ऐसा चिल्ला उठा कि उससे वह स्वयं भयभीत हो गई।

किन्तु चन्द्रसेन के अन्य कितने ही साथी बहुत प्रसन्न थे।

३५

वेचारा ललितसेन ! वह भी कृष्णकुमार के कहने से अपने पिता प्रसन्नसेन के साथ बम्बई चला गया था। वह अब भी कृष्णकुमार पर श्रद्धा-भाव रखता था। उनमें उसे एक ऐसा कर्मवीर दिखलाई देता था जिसके ऐसे अगर सौ युवक भी हो जावें तो वे अपने देश की मोह-निद्रा तोड़कर उसे जगाकर, कर्मक्षेत्र में खड़ा कर देने में समर्थ हो सकते हैं। जब भूख-प्यास की तनिक भी परवा न करके कृष्णकुमार कभी दोपहर बाद दो-तीन बजे आते और रात में आधी-आधी रात तक न आते, तब वह प्रशंसापूर्ण आश्चर्य से प्रभावित हुए बिना न रहता। सोचता—मुझे तो अगर जल-पान में भी आधे घंटे की देरी हो जाय तो क्रोध आये बिना नहीं रहता, कुछ काम करना असंभव हो जाता है, नौकर-चाकरों पर झुँझलाने लगता हूँ या उनमें से किसी को पीट ही देता हूँ और एक ये हैं जो इस तरह जनता में काम कर सकते हैं। और कैसी अद्भुत संगठन-शक्ति है इनमें ! जहाँ लोग किसी की भी नहीं सुनना चाहते, क्षुद्र से क्षुद्र बातों को लेकर झूठे गौरव और व्यर्थ के मान-अपमान में लगे रहना चाहते हैं, वहीं ये उनमें उचित आत्म-सम्मान का भाव, संगठित कार्य करने की इच्छा और स्वदेश के प्रति निःशंक प्रेम उत्पन्न करने में समर्थ हो जाते हैं।

सब जगह कृष्णकुमार को ऐसी सफलता मिल ही जाती थी। ऐसा न था। किन्तु अगर कहीं न मिलती तो उसमें ललित उनका कोई दोष न देख सकता था।

इसी से वह कृष्णकुमार की बात टाल नहीं सका। किन्तु उसके बड़े भाई भद्रसेन उसके बम्बई जाने के विरोधी थे। उनका कहना था कि पिछले चालीस साल पर नज़र डालकर हरएक देख सकता है कि कुछ योरपियन लोग हिन्दू, मुसलमान, जैनी, बौद्ध आदि बनकर किस तरह यहाँ के लोगों

को बुद्धू प्रमाणित करना चाहते हैं। इस चक्कर से हमें सर्वथा दूर रहना चाहिए। पर जब उन्होंने ललित की विशेष इच्छा वहाँ जाने की देखी तब और कुछ न कहा, क्योंकि वे भी कृष्णकुमार से अपने ढंग से बहुत कुछ कराने की इच्छा रखते थे।

बम्बई जाकर उसके पिता तो इला की मंडली में से किसी से न मिले पर वह रोमा से मिला और उसे अपने यहाँ आने का निमन्त्रण दे आया। अपने यहाँ वापस आकर उसने अपने भाई से कहा--रोमा एक बार यहाँ आवेगी। वह आना चाहती है।

भद्रसेन ने उस समय 'अच्छा' कह दिया और अपने काम में लग गये।

फिर एक दिन ललित ने आकर कहा--रोमा आगई है।

भद्रसेन ने तब भी अच्छा कह दिया और जो काम कर रहे थे, उसे और भी तेज़ी से करने लगे।

इसके चौथे दिन उसने भद्रसेन से कहा--आज रोमा जाना चाहती थी पर पिता जी ने यह इच्छा प्रकट की है कि उनके पूरे दल को यहाँ बुलाया जावे। शायद वे इन्हें भी कीर्त्तन-कार्य में संलग्न करना ही श्रेयस्कर समझते हैं।

भद्रसेन ने सिर उठाकर कहा--वे समझते हों या न हों, पर तुम्हारा इन सब कामों में पड़ना मुझे ज़रा भी पसन्द नहीं है। यह ढंग यश कमाने या पुण्य लूटने का नहीं है, बल्कि शुद्ध कलंक और उचित अपमान पाने का है। तुम इस सबसे बचे रहो। अच्छा हो, अगर तुम कृष्णकुमार के पास चले जाओ और उनके साथ गाँवों के औद्योगिक संगठन के काम में लग जाओ। मैं अपनी एक योजना उनके सामने रखकर उसमें उनकी पूर्ण सहायता चाहता हूँ।

और उन्होंने वह योजना उसी समय उन्हें समझाई। ललित को उसी दिन वहाँ से चला जाना पड़ा।

वह चला तो गया किन्तु ग्राम-संगठन के किसी कार्य में इस तरह लगना उसके शरीर और मन दोनों की इस समय

की दशा के बिलकुल विपरीत था––उसका शरीर अत्यधिक विलास-प्रिय हो जाने से इस काम के साधारण कष्टों का सामना भी न कर सकता था और उसका मन रोमा की बातों के आकर्षण से ऐसा हो रहा था कि इस विच्छेद को उसने विधाता का कठोर दंड माना। उसे जल, फल, लता, वृक्ष सब बेहद सुखी जान पड़े और सब उसकी दुर्दशा पर हँसते हुए।

कृष्णकुमार को ऐसे आदमी से क्या सहायता मिलती? उन्होंने कहा––आपका मन स्वस्थ नहीं है। आप लौट जावें, मैं जो कुछ कर सकता हूँ, करूँगा। जरूरत समझूँगा तो कुछ और साथियों को भी बुला लूँगा।

ललित ने झल्लाहट के स्वर में कहा––यही तो भाई साहब को पसन्द न आवेगा। वे यही चाहते हैं कि आप सब काम उनकी ओर से ही करें। और उनके ढंग से।

कृष्णकुमार ने हँसकर कहा––वह सब मुझे मालूम है। आप लौट जाइए, नहीं तो आपके शरीर के भी अस्वस्थ हो जाने का विशेष भय है––शायद ज्वर आ जावे, या और कोई उत्पात खड़ा हो जावे। यहाँ डाक्टर की कौन कहे, पुराने वैद्य-हकीम तक नहीं रह गये हैं। किसी के पास पैसे हैं ही नहीं। मौत के मुँह में जाना उनके लिए बुरा भी नहीं है।

एक कठिन वेदना कृष्णकुमार के मुँह पर झलक उठी। उसी दिन ललितसेन वापस चले आये। आकर अपने भाई से कहा––मेरी तबीअत ठीक नहीं रही––ज्वर हो आया था।

भद्रसेन ने कहा––अच्छा ही किया जो तुम लौट आये, वहाँ तो कुछ दवा भी न हो सकती। हमारी दुनिया निराली हो गई है। जितने आदमी पिछली बड़ी लड़ाई में मरे थे, उतने यहाँ साल भर में साधारण रोगों से ही मर जाते हैं। रोगों का सामना करने की शक्ति उनमें है ही नहीं, और दवा लेने के लिए पैसे भी पास में नहीं हैं। इस वैज्ञानिक युग में भी कौन उनकी परवा करे?

ललित ने मन ही मन कहा--अब आप तो कर रहे हैं। मानो वह उन्हें चिढ़ाना चाहता हो।

रोमा आई, फ़ातिमा आई, और लोग भी आये--सिर्फ़ इला नहीं आई। रोमा ने हिन्दू-धर्म के महत्त्व पर भाषण दिया और फ़ातिमा ने इस्लाम-धर्म की सहनशीलता पर। श्रोता लोग मुग्ध हो गये। दूसरे दिन फिर भाषण हुआ। रोमा ने आर्य-धर्म की श्रेष्ठता का गान किया और संसार भर के धर्मों की उत्पत्ति उसी से सिद्ध करनी चाही। धर्म का सम्बन्ध किसी विशेष भाषा या लिपि आदि से नहीं वल्कि भावों की उच्चता, वैज्ञानिक पद्धति तथा चरित्र की शुद्धि से है और इन तीनों में आर्य-धर्म सर्वश्रेष्ठ है, यह प्रतिपादित कर देने का उसने प्रयत्न किया। उसके बाद फ़ातिमा ने इस्लाम-धर्म की वैज्ञानिक विवेचना की और योरप के विद्वानों की सम्मतियाँ सुनाकर यह बतलाया कि उन्होंने भी इसे उन तीनों गुणों से, जिन्हें रोमा ने किसी धर्म के लिए आवश्यक कहा था, पूर्ण माना है। अरबी और फ़ारसी के इस विषय के काव्यों से उसने जो छोटे-छोटे अंश अपने कंठ की पूरी मिठास से लोगों को सुनाये, उन्हें सुनकर लोग आश्चर्यचकित-से रह गये--मानो उन्हें यह विश्वास ही नहीं हो सकता था कि यह भी संभव है। संस्कृति और विज्ञान के रहस्यों पर भी उन्होंने नया प्रकाश डाला, जिससे लोगों को अपने मन की जड़ता या कठोरता बहुत कुछ विगलित होती जान पड़ी।

तव प्रसन्नसेन ने इला को तार दिया--तुरन्त आइए--विना आपके आये यहाँ का इस समय का शुभ काम पूरा नहीं हो सकता।

इला इस तार को पाकर मानो स्वर्ग में पहुँच गई। उसी दिन वह यहाँ के लिए चल खड़ी हुई।

आकर उसने जो कुछ देखा उससे उसकी चन्द्रसेन के इस तरह भाग जाने के कारण उत्पन्न हुई कठिन चिन्ता वहुत कुछ दूर हो गई। जो कुछ वह उनके साथ रहकर साल दो साल बाद करना चाहती थी, क्या उसे अब शीघ्र ही करने का अवसर नहीं पा सकती है?

३६

स्वदेश में लौट आने के कुछ समय पश्चात् चन्द्रसेन ने सुधा को एक पत्र और लिखा। वे यात्रा के समय भी तीन पत्र भेज चुके थे। उन्होंने अन्तिम पत्र के द्वारा उत्तर में दो पंक्तियाँ अवश्य लिख भेजने का सुधा से अनुरोध किया था। सुधा ने उसे मानकर पत्र भेज दिया था। फिर उन्होंने कुछ न लिखा। अब लिखा——.....हो गया——इला का मोह-जाल पूरी तरह छिन्न-भिन्न हो गया। योरप में एक नई ही दुनिया मेरे सामने आई। जहाज पर एक उससे भी विचित्र संसार मुझे अपने ही भीतर दिखलाई दे गया। 'जो पिण्ड में है वही ब्रह्माण्ड में है' इसे मानो मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। बाहर भीषण संघर्ष है और भीतर भी वैसा ही भयानक संघर्ष है। बाहर भ्रम में फँसानेवाला दृश्य बहुत अधिक है, किन्तु भीतर भी वह उसी परिमाण में मौजूद है। यदि फिर मैं ऐसी ही बुरी तरह फँस गया तो आश्चर्य क्या ?

अन्त में मुझे 'जीवन-ज्योति' दिखाई दे गई। तुम्हारे सुधामय पत्र में, भीतर की सुधामय शक्ति की आश्वासनपूर्ण, ज्ञानपूर्ण, नव पथ प्रदर्शक वाणी में, योरप के नये वातावरण में, वहाँ के विद्वानों के वास्तविक विद्वानों की नवीन कल्पना में मैंने वह जीवन-ज्योति देखी। और अब मैं भाग आया हूँ——इला आदि का साथ छोड़कर भाग आया हूँ——नैनीताल में। यहाँ की प्राकृतिक शीतलता मेरे हृदय को भी शीतल कर देगी, ऐसी आशा लेकर मैं आया था। पर सम्भवतः तुम्हारी दो पंक्तियों के बिना वैसा हो नहीं सकता। क्या तुम ऐसी उदार न हो सकोगी ? उत्तर मिलने पर मैं वहाँ आने का साहस करूँगा।.....

इस पत्र का जो उत्तर सुधा ने दिया वह संक्षिप्त होने पर भी कटुता में शून्य न था। उसने लिखा था——

"...जो जीवन-ज्योति आपको सर्वत्र दिखाई देने लगी है, या दिखाई देने लगी थी, वह भी वैसी ही भ्रान्तिपूर्ण जान पड़ती है, जैसी वह ज्योति, जिसके प्रकाश में उससे पहले आप अपने जीवन-पथ पर भ्रमण कर

रहे थे। इसमें आश्चर्य करने की भी कोई बात नहीं, क्योंकि 'गो-गोचर' जहाँ तक मन जा सकता है, सब 'माया' ही तो है। आज तक कोई सत्य या आदर्श सिद्धान्त आप कुछ भी ग्रहण कर सके हैं ?

"आपमें साहस की जो कमी है, वही इसका प्रमाण है कि आप ठीक ज्योति नहीं देख सके। आप यहाँ आकर क्या करेंगे ? हाँ, अपने एक साथी या सहायक 'कवि' नवीन जी को आप यहाँ भेज सकें तो बड़ी कृपा हो। उनके अन्याय की एक पात्री यहाँ उनकी प्रतीक्षा में है। वे आपके साथी हैं, इसलिए यह सुनकर आपको आश्चर्य तो हो ही नहीं सकता।"

चन्द्रसेन ने इसे पढ़कर सोचा—यह पत्र। इससे तो अच्छा था कि वह पत्थर का एक टुकड़ा भेज देती। वह भी इतना कठोर न जान पड़ता। ओह ! तो क्या सचमुच मैं एक अन्धकार से निकलकर दूसरे अन्धकार की ओर जा रहा हूँ ? हे दयामय ! क्या तुम्हारा यह 'सुन्दर' संसार इसी प्रकार का है ? दया करो, दया ! तुम्हीं इस बार मुझे अपना लो, जिसमें फिर कभी किसी से ऐसा न कहना पड़े। उनकी आँखों में आँसू नहीं आये किन्तु उनके हृदय से वे अवश्य निकले। और उन्हें जान पड़ा कि उनके हृदय के भीतर से उन्हें ईश्वरीय आदेश हो रहा है—पापपूर्ण शरीर का संहार कर दो। तुम्हारे इस शरीर के छूटते ही तुम्हें देव-परियाँ अपनायेंगी—तुम इन्द्रलोक में जा पहुँचोगे और प्रभु के दर्शन भी पा सकोगे। करो इतना साहस ! इसी साहस के बल से पाप-पुन्ज-प्रहारी शक्ति तुम्हें सदैव के लिए अपना लेगी। तुच्छ रूप और साधारण शक्ति की ओर तुम देखते ही क्यों हो ?

बार-बार ऐसी ही आवाज़ें उन्हें सुनाई देने लगीं। उन्होंने सोचा—यही तो आकाशवाणी है। 'चाइना पीक' पर चलकर 'बदरीनारायण' की झलक देखते हुए, अपने शरीर का समर्पण कर दें।

वे उठकर खड़े हो गये, किन्तु फिर बैठ गये। उन्हें याद आया कि मेरे पिता हैं, भाई हैं, बड़े भाई ने कई बार तार देकर मुझे बुलाया है। मेरी प्रतीक्षा कर रहे हैं। उन्होंने सुधा के उस पत्र को खोलकर

उस पर फिर एक दृष्टि डाली। 'आज तक कोई सत्य या कोई आदर्श सिद्धान्त आप ग्रहण कर सके हैं?' यही प्रश्न है। क्या किया है मैंने अब तक? क्या चाहती है सुधा?--सब माया है, नहीं यह ठीक नहीं। यही मायापति भी तो हैं। किन्तु यह आवाज़। कौन कहे यह माया की है या मायापति की? जो मुझे बुराइयों की ओर घसीटकर ले गया, वह कौन था? और जिसने इतना कड़ा, कठोर निर्मम दंड-प्रहार कर दिया, वह कौन है? क्या यह सब प्रकृति का ही कार्य है? और मैं चाहूँ तो स्वयं ही इसका स्वामी बन जाऊँ?--अब भी--क्या अब भी ऐसा हो सकता है? या यह भी मेरा भ्रम ही है--मुझमें मृत्यु का सामना करने का साहस न होने का प्रमाण है? सुधा क्या चाहती है? वह मेरे इस तरह मरने पर मुझे कैसा कायर समझेगी? मन ही मन हँसकर कहेगी--कैसा ठीक समझा था मैंने? ऐसे पुरुषों में सत्साहस हो ही कैसे सकता है? मैं नहीं मरूँगा . . . पर जीकर क्या होगा? इला को अपने देश से बेहद प्रेम है, मैं तो उसके लिए खिलौना और यन्त्र जैसा हूँ--मैं उसके चक्कर में आया ही क्यों? बस, यहीं मुझे विधाता का विधान मानने को विवश होना पड़ता है। मेरा इसके पीछे सब कुछ चला गया। अब शेष ही क्या है? पक्षियों का कलरव, प्रकृति की मनोरमता, सब मेरे लिए निर्जीव और व्यर्थ है। ऐसा अपदार्थ हो गया हूँ मैं--मृत से भी बदतर!

'मरूँगा--यह यंत्रणा मैं सह नहीं सकता' कहता हुआ वह सीढ़ियों पर से ऊपर चढ़ गया। अपने कमरे में जाकर पिस्तौल उठा ली। फिर एक चिट पर लिखा--मैं सहर्ष मर रहा हूँ। तभी सुना कोई और सीढ़ी पर चढ़ रहा है। एक हाथ में पिस्तौल, दूसरे में वह चिट लिये खड़ा रह गया।

आँधी की भाँति इला ने उस कमरे में प्रवेश किया।

और उसने बतलाया कि नीचे के कमरे में भद्रसेन बैठे हुए हैं।

३७

यह सुनकर भी कि उसके बड़े भाई नीचे बैठे हुए हैं, चन्द्रसेन ज्यों का त्यों खड़ा रहा।

इला ने उसके एक हाथ से पिस्तौल ले ली और दूसरे हाथ की चिट भी छीन ली। तब वह बोला--मैं नीचे नहीं जाना चाहता। अच्छे अवसर पर तुम्हें ईश्वर यहाँ लिवा लाया है--आज इसी समय या तो मैं मरूँगा या तुम।

और उसने कमरे के दरवाज़े तेज़ी के साथ बन्द कर दिये।

इला हँसी। वह बोली--बहुत समय बाद ऐसी बात किसी से सुनने को मिली है। तुम मरने जा रहे थे? और अब मुझे भी मारना चाहते हो? मैं मौत से नहीं डरती। इटली का कोई भी व्यक्ति मौत से नहीं डर सकता। लेकिन पहले यह बतलाओ कि तुम यह सब क्यों कह रहे हो?

चन्द्रसेन ने विचित्र स्वर में कहा--अब समय नहीं है।

इला--समय तो अभी इतना अधिक है कि उसमें हम लाखों साल ज़िन्दा रह सकते हैं। यह किसने कहा है कि आज ही कल में महाप्रलय होनेवाला है?

चन्द्रसेन--मैं कहता हूँ। तुमने मेरे सोने के संसार से मुझे हटाकर अपना और मेरा महाप्रलय इतने समीप ला दिया है। अब तुम बच नहीं सकतीं।

इला--क्या मैं कोई छोटी बच्ची हूँ, या परदे और दूसरों के आश्रय में पली हुई कोई हिन्दुस्तानी स्त्री हूँ, जिसे आप इस तरह डराना या बँदर-घुड़की देना चाहते हैं? कहाँ था तुम्हारा सोने का संसार? नरक के कीट बन गये थे तुम! उसी से मैंने तुम्हें खींचा था। फिर तुम उसी में नहीं गिर सकते हो, क्योंकि तुमने यह देख लिया कि कितने ही और आदमी, जो तुमसे हैसियत में किसी तरह कम नहीं हैं, किस उच्च कार्य-क्षेत्र में रहते हैं। नहीं गिर सकते, इसी लिए रोते हो। मैं इसके लिए

करूँ तो क्या करूँ ? अच्छा, क्या सुधा भी तुमसे चिढ़ गई है ? उसे तो तुम्हारी पूजा ही करनी चाहिए––तुम चाहे जैसे हो।

चन्द्रसेन––बस करो––सुधा का नाम तुम अपनी ज़बान पर मत ले आओ। उन्हें क्या करना चाहिए क्या नहीं, यह बात वे तुमसे अधिक जानती हैं।

इला––ज़रूर जानती होंगी। तभी तो वे आपका साथ न देकर कृष्ण-कुमार का साथ देना चाहती हैं। क्या आप जानते हैं कि कल कृष्णकुमार वहाँ गये हैं ? अच्छा, क्या किसी राजकुमारी का विवाह यहाँ की जाति पाँति और रस्म-रिवाज के अनुसार किसी ऐसे आदमी से भी हो सकता है ? मैंने तो सुना है कि एक एक राजाओं को इसी लिए कई रानियाँ रखनी पड़ती हैं, क्योंकि राजकुमारियों का विवाह दूसरों के साथ नहीं हो सकता। किन्तु यह भी सुना है कि सैकड़ों और कहीं-कहीं हज़ारों उप-पत्नियाँ वे रखते हैं। फिर आप इस तरह घबराये हुए क्यों हैं ?

और वह दरवाज़ा खोलकर बाहर निकली।

चन्द्रसेन भी उसके पीछे-पीछे नीचे उतर गये।

वहाँ अपने बड़े भाई से लपटकर वे रो पड़े।

भद्रसेन इसके लिए तैयार न थे। इला को वहीं खड़े खड़े इस दुर्बलता पर हँसती देखकर वे और भी लज्जित हुए। उन्होंने कहा––आज रोने का नहीं, हँसने का दिन है भाई ! मैं तुम्हारे विवाह का शुभ समाचार लेकर यहाँ आया हूँ। आओ बैठो।

चन्द्रसेन ने कुरसी पर बैठते हुए कहा––क्या आप मेरा इला से विवाह कर देना चाहते हैं, नहीं––मैं इसके लिए कभी राज़ी नहीं हो सकता। आप मेरी भूलों के लिए मुझे क्षमा कर सकें तो क्षमा कर दें। पर मैं ऐसा विवाह नहीं कर सकता।

इला ने भीषण मुस्कराहट के साथ पूछा––अब मुझमें ऐसी कौन-सी बुराई आप देखने लगे हैं ?

फिर उसने कहा––मैं यहाँ अपना विवाह करने के लिए नहीं आई हूँ।

इसके लिए मुझे अपने ही देश में तुमसे अच्छे आदमी मिल सकते थे। मैं यहाँ आदमियत का प्रचार करने के लिए आई हूँ। इस बार तुम्हारे मुल्क की एक बहुत बड़ी सभा रोमा को 'पंडिता' की उपाधि देने जा रही है और एक दूसरी सभा फ़ातिमा को आलिमा की। तुम्हारे जगद्-गुरुओं की भाँति मैं भी एक दिन विश्वनेत्री कहलाई जाने की उच्च आकांक्षा रखती हूँ। रोमा और फ़ातिमा दोनों मेरी ही अनुयायिनी समझी जायँगी और तुम लोग मेरे भक्त।

चन्द्रसेन भौंचक-सा रह गया। जब वह इला से पहले-पहल मिला था तब उसके देवीत्व के प्रचार से वह कुछ विशेष रूप से प्रभावित हुआ था। उस समय भी इला ने इसी ढंग से उससे बातें की थीं। उस समय उसे उसकी बातें बुरी नहीं मालूम पड़ी थीं। बल्कि इन्हें सुनकर उसे प्रसन्नता हुई थी। किन्तु धीरे-धीरे सब कुछ पलट गया था।

और अब फिर वैसा ही हो गया, बल्कि उससे भी बढ़ा-चढ़ा साहस इला के मन में आगया था। भद्रसेन के सामने बिना किसी हिचकिचाहट के वह ऐसी बातें कह रही थी। किन्तु क्या भद्रसेन भी उससे सहमत हो सकते थे? और वे किसके साथ विवाह कराना चाहते थे?

भद्रसेन ने उसे चुप रहते देखकर स्वयं ही कहा—इला के साथ नहीं, सुधा के साथ तुम्हारा विवाह होने जा रहा है। मैं उनके पिता के पास गया था। उनसे बातें करके मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। वे मेरे कार्य-क्रम से बहुत अधिक सहमत हैं। उन्होंने मेरी यह बात भी मान ली कि सुधा के साथ तुम्हारा विवाह शीघ्र से शीघ्र हो जाय। इससे मेरे काम में भी विशेष उन्नति हो सकेगी। मैं औद्योगिक और आर्थिक उन्नति को ही सबसे आवश्यक मानता हूँ। इसमें मुझे सभी से सहयोग मिल रहा है। तुम भी मुझे पूरा सहयोग दो, इसी से तुम इस व्यर्थ के रोने-धोने से अलग होकर सच्चे रास्ते पर आ जाओगे।

इला—ये तो आत्महत्या करने जा रहे थे। यह देखिए, इस चिट पर इन्होंने क्या लिख छोड़ा था?

भद्रसेन ने वह चिट लेकर पढ़ी।

उन्होंने कहा---ऐसी अधोगति में पड़नेवाले केवल यही एक राजकुमार नहीं हैं। असंयम और विलासिता के कारण साहस और आत्मविश्वास से वंचित हो जाना हमारे लिए स्वाभाविक होता है। इस बुरे परिणाम से कोई बचा नहीं सकता। बड़े बड़े देश इसी तरह गारत हो गये और अब भी होते जाते हैं। व्यक्ति, समाज, देश सभी के लिए यह नियम लागू होता है।

चन्द्रसेन---योरप में तो सभी देश ऐसे ही हैं, फिर---

बात काटकर भद्रसेन ने कहा---यह बात ठीक नहीं। तुम वहाँ बहुत थोड़े समय रहे और सब देशों को देख नहीं सके। माण्टीकार्लो में रोज करोड़ों का जुआ होता है। उसे देखकर योरप की सभी जगहों को वैसी ही समझ लेना उचित न होगा। हिन्दुस्तान की तरह योरप के देशों में भी सभी प्रकार के लोग हैं। परन्तु उनमें स्वदेश-प्रेम है। अस्तु, तुम्हें सुधा के साथ विवाह करने में कोई आपत्ति तो नहीं है ?

चन्द्रसेन---क्या उनसे किसी ने ऐसा पूछा है ?

भद्रसेन---उन्होंने ललित से कहा था कि उनसे तुम्हारा विवाह हो चुका है। जब वे अपने मन से ऐसा मानने लगी हैं तब अब उनसे क्या पूछना है ?

चन्द्रसेन---वह उन्होंने केवल इसलिए कहा होगा क्योंकि उन्होंने ललित के साथ अपना विवाह करना ठीक नहीं समझा।

भद्रसेन---नहीं, केवल एक बार ही ऐसी बात उन्होंने कही होती, तब ऐसा माना जा सकता था। जब कृष्णकुमार उनसे मिलने गये तब उनसे भी उन्होंने यही कहा था।

चन्द्रसेन---यह झूठ है। ऐसी झूठी बात आपसे किसने कही है ?

भद्रसेन---यह झूठ नहीं हो सकता। स्वयं कृष्णकुमार ने मुझसे ऐसा कहा है।

चन्द्रसेन--कृष्णकुमार ने ? वह सबसे बड़ा धूर्त है ! उसे ही तो वह सबसे अधिक चाहती है।

और उसने सुधा का पत्र निकालकर उनके हाथ में दे दिया।

भद्रसेन उसे पढ़कर हँसते हुए बोले--इसमें तो वैसा कुछ भी नहीं लिखा है जैसा तुमने जबर्दस्ती समझ लिया। उलटा इस पत्र से तो यही मालूम होता है कि तुम खुद वहाँ नहीं गये बल्कि तुमने केवल पत्र भेजा, इससे चिढ़कर दो एक बात लिख दी गई है। फिर भी इस पत्र के द्वारा असल में तुमको बुलाया गया है।

चन्द्रसेन--नहीं, नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। आप नहीं जानते, मैं तो जानता हूँ कि--

भद्रसेन--तुम कुछ भी नहीं जानते ! यह बतलाओ कि तुम एक ही विवाह करना चाहोगे या अन्य राजाओं की तरह कई एक ?

इला बोल उठी--क्षमा कीजिए, मुझे बीच में बोलना न चाहिए, पर अगर कुछ हानि न हो तो मैं आपसे ही यह पूछना चाहती हूँ कि आप कितने विवाह करेंगे ?

भद्रसेन--मैं ? मैं तो एक भी विवाह न करूँगा।

इला ने अत्यन्त आश्चर्य में आकर कहा--क्यों ?

भद्रसेन--मैंने जिस काम को हाथ में ले लिया है उसमें मुझे ऐसी स्वतंत्रता रह ही नहीं गई।

इला--क्या आप विवाह-विरोधी संस्था के सदस्य बन आये हैं ?

भद्रसेन--ऐसा ही समझिए--क्योंकि बिना किसी ऐसी संस्था का सदस्य बने हुए मैं ऐसा कर सकता हूँ, यह मानने को शायद आप तैयार न हो सकेंगी।

चन्द्रसेन--तो इस बात को मुझसे कहने के लिए आप इला को क्यों अपने साथ लिवा लाये हैं ? सुधा के साथ यदि मेरा विवाह हो जाय तो मैं और कोई विवाह कर ही नहीं सकता।

भद्रसेन--यही सुनने के लिए इला यहाँ आई है।

इला--हाँ यही, ठीक यही सुनने को। तुम्हें मैं बधाई देती हूँ।

३८

भद्रसेन ने एक काम और किया——उन्होंने तार भेजकर नवीन कवि को लिखा——तुरन्त आओ। शिवपुर जाना पड़ेगा।

वे जानते थे कि व्रजकिशोर ही नवीन कवि थे। व्रजकिशोर आये और आकर अवसर पाने पर चन्द्रसेन को अपनी वे कवितायें सुनाने लगे, जो उन्होंने इस बीच में बनाई थीं।

चन्द्रसेन ने उन्हें सुनकर कहा——क्या तुम जहाज़ पर कविता बनाने की कला भूल गये थे?

व्रजकिशोर——यह तो मैंने जहाज़ पर चढ़ने से पहले ही समझ लिया था कि कविता-कामिनी भी मुझसे रूठ गई है।

चन्द्रसेन——और कोई कामिनी भी रूठी थीं क्या?

व्रजकिशोर——हाँ, एक और भी ऐसी थी——उसकी बात मैं आपसे कह नहीं सका।

चन्द्रसेन——क्यों? ऐसी बात तो इससे पहले तुमने मुझसे कभी नहीं छिपाई थी?

व्रजकिशोर——इस बार बहुत गहरा अपराध था। मैंने उससे गन्धर्व-विवाह कर लिया था। अन्य सुन्दरियों के सौन्दर्य की दूर से पूजा करना ही एक सच्चे कवि की भाँति मेरा पवित्र कार्य था।

चन्द्रसेन——वह तुम्हारी जाति की स्त्री है?

व्रजकिशोर——तब क्या? और हम लोगों के भाग्य में है ही क्या? वह भी हिन्दुस्तानी ही है। अन्य जातियों की——गौराङ्गी आदि——स्त्रियाँ तो आप लोगों को ही मिल सकती हैं।

चन्द्रसेन——चाहो तो इस बार परस्पर बदलौवल हो जावे। तुम्ही गौराङ्गी देवी को ले लो।

व्रजकिशोर---ईश्वर न करे ऐसा हो। जिसे आप ही नहीं सँभाल सकते, उसका हम-जैसे साधारण लोगों से ऐसा सम्बन्ध कितने दिनों तक निभ सकता है ? मैंने वापस आकर अपनी स्त्री की यथेष्ट खोज की किन्तु असफल रहा। अपना घर-द्वार छोड़कर वह न जाने कहाँ चली गई।

चन्द्रसेन---उन्हें जन्म भर ठीक तरह रखने का निश्चय है ?

व्रजकिशोर---अपनी ओर से मैं कोई अपराध न करूँगा। अगर वे न रहना चाहेंगी तो क्या कर सकता हूँ।

चन्द्रसेन---तब क्यों न रहना चाहेंगी ?

व्रजकिशोर---इसलिए कि मैं आपके साथ समुद्रपार जाकर जाति-पाँति खो आया हूँ।

चन्द्रसेन---वे दिन अब लद गये। अब ऐसा नहीं किया जा सकता।

व्रजकिशोर---राजकुमारों और राजाओं के लिए तो बहुत-सी ऐसी बातें हो चुकी हैं जो गई---बीती---या भूतकाल की---कही जा सकती हैं, पर साधारण जनता के लिए वे अब भी वैसी नहीं हैं। बड़े लोगों का जो कुछ भी नहीं बिगाड़ सकते बल्कि उनके नाराज हो जाने से अपना ही बहुत कुछ बिगड़ जाने का भय रखते हैं, वे ही साधारण लोगों के प्रति अपनी सामाजिक दंड की तलवार तेजी से चलाकर अपनी पतित अवस्था का पूर्ण परिचय दिया करते हैं।

चन्द्रसेन---मैं खूब समझता हूँ, वह स्त्री तुम्हारी जाति की नहीं है।

व्रजकिशोर---आपके लिए ऐसी बात कहना शोभाजनक नहीं है। यदि वह मेरी जाति की न हो तब भी क्या आपको ऐसा कहना चाहिए ? आप तो योरोपियन लोगों को भी अपनी जातिवालों में ही मानते हैं। इस समय जो जातियाँ यहाँ बन गई हैं उनमें से प्रत्येक में न जाने उनसे पहले की कितनी जातियों का मिश्रण है।

चन्द्रसेन---तुम्हारी स्त्री शिवपुर में है। उसने कहला भेजा है कि अगर कवि जी आकर मेरे सामने हाथ जोड़कर खड़े हों और वे तब तक अपने

पद्यों से मेरी स्तुति करते रहें, जब तक मैं उन्हें बैठने को न कहूँ, तो मैं क्षमा कर दूँगी और कवि को अपनी ही जाति में मिला लूँगी।

व्रजकिशोर——जान बची। मैंने तो न जाने कैसे कैसे दंडों की कल्पना की थी। इसी लिए तो अपनी कविताओं में इधर मैंने करुण-रस के साथ वीररस की भी धारा बहानी चाही। कुछ वीरता अपने मन में लानी आवश्यक थी न। मैं हाथ जोड़ने और पाँव पड़ने को तो कोई दंड ही नहीं समझता। आपकी जय हो! मुझे वहाँ जाने की आजादी कब मिलेगी?

चन्द्रसेन——आपको किसी ने क़ैद कर रखा है क्या? जाइए न। तुरन्त भाग खड़े होइए।

व्रजकिशोर——इतना बेवकूफ़ तो मैं हूँ नहीं। आपका प्रेम-पत्र पाये विना वहाँ कैसे जा सकता हूँ।

चन्द्रसेन——मेरे प्रेम-पत्र की प्रतीक्षा करनेवाला वहाँ कोई नहीं है। सुधा मेरे साथ अपना विवाह नहीं करना चाहती। मुझमें कोई ऐसा गुण नहीं, जो उसे खींच सके।

व्रजकिशोर——स्त्रियाँ गुणों की ओर कब से खिचने लगीं?

चन्द्रसेन——यह उन्हीं से पूछना——अगर पूछ सकने का साहस बटोर सको!

व्रजकिशोर——आपसे वे क्या चाहती हैं? स्त्री पति से धन, सम्मान और सन्तान, तीन वस्तुओं की ही इच्छा रख सकती है। आप तीनों दे सकते हैं। मैं तो अपनी स्त्री को प्रथम दो वस्तुएँ इस जीवन के अन्त तक भी नहीं दे सकता। अगर वे भी मुझे नितान्त गुणहीन समझकर आकर्षण के स्थान पर विकर्षण का शिकार हो गई हों तो मैं क्या करूँगा?

चन्द्रसेन ने रोगियों की-सी हँसी हँसकर कहा——वही, जो करने को मैं सोच रहा हूँ——हिमालय-प्रस्थान। वहाँ हिमालय के योगियों से अद्भुत योग-शक्ति लेकर और सभी गुणों से मंडित होकर हम दोनों

लौट आवेंगे और फिर प्राचीन तपस्वियों की भाँति, हमेशा के लिए युवावस्था पाकर, मनमाने विवाह कर लेंगे।

व्रजकिशोर--तब भी विवाह! विवाह से बढ़कर सुख और आनन्द अगर अपने आपमें मिलने लगे तो ऐसा व्यर्थ का उत्तरदायित्व कौन ले? काव्य-साधना के लिए यदि स्त्री आवश्यक न होती तो मैं तो इस समय भी विवाह न करता। अनन्त युवावस्था तो अनन्त अभिशाप से कम नहीं है। योरप की बुड्ढी स्त्रियों को भी वासनापूर्ण शृंगार करते और पाउडर, लिप-स्टिक आदि से अपने को सुसज्जित तथा रमणीय बनाते देखकर मेरी तो सारी देह जल उठती थी।

चन्द्रसेन--मुझे वहाँ सभी को ठाट-बाट से रहते देखकर अपने देश के भले घरों की फूहड़ स्त्रियों के प्रति बेहद क्रोध आया। भगवान् ने जो शरीर हमें दिया है, उसके प्रति विरक्ति दिखाना मूर्खता प्रकट करना है।

व्रजकिशोर--आप कब क्या कहेंगे, इसका कुछ भी ठीक नहीं। वहाँ आप उनकी बेहद सजावट--तितलियों-जैसी रंगामेज़ी--देखकर हँसते थे और अब आप लापरवाही करने को बुद्धिहीनता कह रहे हैं।

चन्द्रसेन--अपनी दोनों बातें मुझे ज़रूरी और ठीक जान पड़ती हैं--फूहड़पन और तितलीपन का तिरस्कार तथा उचित सजावट का सम्मान।

व्रजकिशोर--तो अब आपने बहुत उचित दृष्टि पा ली है। मैं तो रंग-रूप का प्रशंसक कवि हूँ। साज-शृंगार मुझे बनावटी ही जान पड़ते हैं--चन्द्र का शृंगार क्या, फूलों का शृंगार क्या।

चन्द्रसेन--मैं तो रूप का भी भक्त नहीं रहा। पर इससे क्या?

व्रजकिशोर--सच बताइए, आपके विवाह के बारे में क्या हो रहा है? तभी मैं वास्तविक रूप के प्रति आपकी उपेक्षा का कारण समझ सकता हूँ।

चन्द्रसेन--कैसा विवाह? क्या मैं बिना विवाह के मरा जा रहा हूँ? और मैं राजकुमार हूँ, अगर चाहूँ तो आज अपने दो-तीन

विवाह कर लूँ ! पर अगर तुम सुधा की बात पूछते हो तो वह मुझसे मीठी मुस्कराहट के साथ बातें करने की जगह मुझ पर नफ़रत की नजर डाल कर यही कहना चाहती है कि मैं किसी योग्य नहीं हूँ। धन तो मेरा अर्जित किया हुआ है नहीं, सम्मान के योग्य भी मैंने विशेष कुछ नहीं किया। टेनिस के खेल में प्रसिद्धि प्राप्त कर चला था। उसे मैंने खो दिया। और वह प्रसिद्धि इला को चाहे जितनी प्रशंसनीय जान पड़ी हो, सुधा को सदैव विषमयी मालूम हुई है। यह जानकर ही मैं उधर फिर पूरी तरह लग न सका। वह कष्ट में पड़कर, दूसरों के कहने से जबर्दस्ती मेरी स्त्री बन जावे--ऐसा तो मैं नहीं चाहता। ऐसा चाहता तो मेरा जीवन दूसरा ही होता। प्राणों का आदान-प्रदान यदि न हुआ--

नवीन ज़ोर से हँस पड़ा। बोला--कवियों का जो प्रभाव आप पर पूरी तरह पड़ गया था, वह अब भी ज्यों का त्यों है। वस्तुतः ऐसा आदान-प्रदान आज तक कभी कहीं हुआ है ? क्या आप चाहते हैं कि वे कल्पनापूर्ण 'महान् सतीत्व' को ऐसा अपना लें कि आपमें ही अपना अस्तित्व मिला दें ? अपनी छाया तक अलग न मानें ? वे भी आपसे ऐसा ही क्यों न चाहें ? कर सकते हैं ऐसा आप ? प्रसिद्धि तो आप लोगों के लिए दुर्लभ या विशेष कष्टसाध्य है नहीं। आप चाहें तो कल से ही सब पत्र-पत्रिकाओं में आपकी प्रशंसायें और आपके चित्र प्रकाशित होने लगें। आप चाहते हैं ऐसा ?

चन्द्रसेन--ज़रूर चाहता हूँ। तुम लोग मेरी जितनी भी प्रशंसा छपवा सको, छपवाओ। रुपये मैं दूँगा। मेरे पास जो कविगण आये थे वे पतन और परकीया-प्रेम को ही आनन्द-पथ तथा रसिकता मानने-वाले थे।

व्रजकिशोर--चलिए, एक दर्जन फ़ोटो तरह-तरह के खिंचवाये जावें और उनका ब्लाक बनने को दे दिया जावे। इस बार आपके पास सच्ची कवि-मंडली आवेगी।

चन्द्रसेन--चलो, अभी चलो।

और वे दोनों उठकर चल खड़े हुए।

नवीन मन ही मन कह रहा था--इस बार अच्छा भूत सिर पर सवार हुआ है--इससे बहुत कुछ लाभ उठाया जा सकता है। सैकड़ों मोटरें, सैकड़ों चित्र, सैकड़ों स्त्रियाँ, सैकड़ों पशु-पक्षीगण ऐसे लोगों के लिए मनोरंजन के कुछ नये साधन नहीं हैं, पर हिन्दुस्तानी पत्र-पत्रिकाओं में अपनी प्रशंसा करवाने की इच्छा में नवीनता अवश्य है। यही वास्तविक उन्नति का सोपान बनाई जा सकती है। क्या ऐसा हो सकेगा ?

राजकुमार चन्द्रसेन सोचते थे--सभी मेरा गुणगान करेंगे--कवि-गण, लेखकगण और सम्पादक लोग--फिर भी सुधा मुझे गुणहीन मानती रहेगी ? नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। मैं ऐसे विचित्र रूप में इस बार उसके सामने आऊँगा कि उसके नेत्रों में चकाचौंध आ जावेगी। वह एक पत्रिका में मेरा एक चित्र देखेगी, दूसरे में दूसरा, तीसरे में तीसरा, और प्रत्येक में मेरी प्रशंसा। फिर मैं स्वयं कवि, लेखक और सम्पादक भी बन जाऊँ--बस, यही ठीक है। अब असली बात मैं पकड़ पाया हूँ।

और उन्होंने व्रजकिशोर से कहा--एक पत्रिका मैं स्वयं भी निकालूँगा। मेरी रचनायें भी सब पत्र-पत्रिकाओं में तुम भेजना।

कवि ने हँसते हुए कहा--खूब ! क्या ही उत्तम बात सोची है आपने। वास्तव में आप प्रशंसा के पात्र हो गये हैं।

भद्रसेन ने इस बारे में सुनकर कहा--यह भी गनीमत है। दुरुपयोग से सावधान होकर बहुत कुछ किया जा सकता है। इस क्षेत्र को मैं कम महत्त्व का नहीं समझता बल्कि अपने क्षेत्र का पूरक मानता हूँ।

इसके दूसरे दिन व्रजकिशोर ने बिना चन्द्रसेन से किसी प्रकार का पत्र लिये शिवपुर को प्रस्थान किया।

३९

नैनीताल---नैनीताल में ही तो पहले-पहल सुधा की चन्द्रसेन से देखा-देखी हुई थी। केवल देखा-देखी--किसी ने किसी से एक शब्द भी नहीं कहा था। जो लोग आँखों की भाषा को बेहद महत्त्व देते हैं उन्हें भी यह विश्वास दिलाया जा सकता है कि वैसी किसी भाषा का प्रयोग भी उन्होंने न किया था। किन्तु इसके बाद चन्द्रसेन ने प्रभाकरदेव की बात मानकर स्वयं उनका राज-काज देखना स्वीकार कर लिया था। सभी यह जानते थे कि वे उनके हाथ में राज्य क्यों देना चाहते थे? अपनी ही बुद्धि-शक्ति से उन्होंने राज्य-शक्ति पाई थी। उन्हें अधिकार था कि वे उसे जिसे चाहें उसे दे देवें। प्रसन्नसेन के पुत्र को अपना उत्तराधिकारी बनाना प्रसन्नसेन की समता प्राप्त करना है। उन्होंने यह भी छिपा न रखा था कि जो उनकी यह शक्ति पावेगा वही शिवपुर की राजकुमारी सुधा के साथ विवाह करने का अधिकारी हो सकता है। चन्द्रसेन यह जानते थे पर सुधा कुछ न जानती थी।

दूसरी बार भी नैनीताल में ही सुधा से उनकी भेंट हुई थी। इस बार इला भी चन्द्रसेन के साथ थी। इला की जो प्रशंसा उन्होंने सुधा से की थी वह उसे अब तक याद है। शायद वह उसे कभी भूल न सकेगी।

जब वह पहली बार नैनीताल से लौटकर शिवपुर गई थी उसके दो ही महीने बाद उसे मालूम हो गया था कि चन्द्रसेन महाराज प्रभाकरदेव के चन्द्रगढ़ का राज्य-भार अपने हाथ में लेकर महाराज की सहायता करना चाहते हैं और महाराज की यह प्रबल इच्छा है कि चन्द्रसेन का विवाह उसी के साथ हो। तब से उसने उनकी तरह-तरह की मूर्तियाँ अपने मानस-पटल पर चित्रित कीं। सुना, वे टेनिस के खेल में सबसे बढ़ गये हैं। एक चित्र खींचा। सुना वे किसी ऐसी देवी के, जो संसार भर का उद्धार करने का दावा कर रही है, भक्त बन रहे हैं---एक और चित्र खींचा! और

तब वे नैनीताल में दूसरी बार आकर—उनसे मिलकर देखा कि वे उस देवी के सम्पर्क में आकर देवता नहीं बने—हाँ, वह देवी अपने असली रूप में प्रकट हुए बिना नहीं रह सकी। उसे सन्देह हुआ कि कदाचित् इसी देवी की पूर्ण पूजा करने के लिए ही उन्होंने अपने पिता के दबाव से बिलकुल अलग होकर चन्द्रगढ़-राज्य का प्रबन्ध अपने हाथों में लेना चाहा था। 'ऐसी नीचता!' तीसरा चित्र खिच गया।

फिर शिवपुर आने के कुछ समय बाद उसने चन्द्रसेन की समुद्र-यात्रा की बात सुनकर सान्त्वना की ही साँस ली थी। चित्रों की संख्या अपने आप बढ़ती गई।

किन्तु जब उसके पास ललित आया तब उसे अपनी अवस्था असह्य ग्लानिप्रद मालूम हुई। उसने ललित को कड़े से कड़ा उत्तर देने का निश्चय किया और वैसा ही कर दिखाया। उसके बाद कृष्णकुमार से मिलने पर उनकी जो श्रद्धापूर्ण बातें अपने प्रति सुनीं, उन बातों के फल-स्वरूप उसे चन्द्रसेन का एक और ही चित्र बरबस खींचना पड़ा।

सविता या सावित्री ने आकर उसे पहले काला कर दिया, फिर रंगीन।

कृष्णकुमार ने अपनी रिपोर्ट में सारा दोष इस भयंकर शिक्षा-प्रणाली का, विषमय वातावरण का, धन का मनमाना इस्तेमाल कर सकने की हानिकारक व्यवस्था का, दूसरे देशवालों पर हमारा इतना भी अधिकार न होने से कि हम जिसे न चाहें उसे यहाँ से निकाल दें, जो कुफल हो रहा है उसको इस तरह से दिखलाया था कि सुधा उनके एक-एक शब्द को सुधा की भाँति ही पान कर गई। भाषा में इतनी मोहक और ओजस्वी शक्ति भी हो सकती है, यह उसने अपने हृदय से पहली ही बार स्वीकार किया। किन्तु इसका एक सुफल और भी हुआ। चन्द्रसेन के प्रति उसकी माया-ममता बढ़ती गई।

और अब उसके पिता भी इस सम्बन्ध की बेबसी से नहीं बल्कि प्रसन्नता से चर्चा करने लगे थे।

किन्तु जब चन्द्रसेन के लौटने पर उनके साथ फिर इला आई और इला का दल और भी बढ़े-चढ़े रूप में आया, तब वह किंकर्तव्य विमूढ़-सी रह गई। चन्द्रसेन का नैनीताल से पत्र पाकर उसे स्वाभाविक मान के कारण क्रोध आया और उसने शीघ्रता से उसका उत्तर भेज दिया।

परन्तु बाद में वह पछताई। इसके बाद एक दिन भद्रसेन आगये। भद्रसेन के प्रति उसके हृदय में बड़ी श्रद्धा हो गई थी। उसके पिता उनके बेहद प्रशंसक हो रहे थे। तब उन्होंने वहीं कृष्णकुमार की वह रिपोर्ट देखी और लौटकर इला को साथ लेकर नैनीताल आये।

अब व्रजकिशोर वहाँ पहुँचे।

Love is Blind

४०

कोगाको का एक पत्र आया। उसमें लिखा था--मेरे प्रिय राजकुमार, आशा है आप मुझे इतनी जल्दी भूल न गये होंगे। मैं यह पत्र आपके पिता के राज्य के पते से भेज रहा हूँ। आपके पास ज़रूर पहुँच जावेगा। मैं रण-क्षेत्र में हूँ। लड़ नहीं रहा हूँ--लड़ाई में आहत लोगों की सेवा में लग रहा हूँ। यह न समझिएगा कि मैंने जो कुछ आपसे कहा था उसमें एक शब्द भी ऐसा न था जिस पर मेरा पूरा विश्वास न हो, फिर भी मैंने यही काम अपने लिए उपयुक्त समझा है। हमारा अन्तिम उद्देश्य तो सबकी रक्षा करना ही है--न कि किसी को मारना।

इस समय प्रत्येक देश में ऐसे जनतंत्र के लिए पुकार मच रही है जो दीन से दीन, हीन से हीन व्यक्ति के लिए उचित काम देकर उनके खाने-पीने, पहरने-ओढ़ने तथा जीवन की अन्य आवश्यकताओं और सुविधाओं का ठीक प्रबन्ध कर सके। एक केन्द्रीय शक्ति को अधिक शक्ति दे देने पर वह उसका दुरुपयोग करती है, किन्तु यदि केन्द्रीय शक्ति रक्खी ही न जावे तब और भी अधिक हानि होने की संभावना रहती है। अमरीका-जैसे बड़े देश ने अपने यहाँ की अड़तालीस रियासतों की जैसी शासन-व्यवस्था की है, उसमें यदि आवश्यक हेर-फेर कर दिया जावे तो वह अन्य बड़े देशों के लिए उपयुक्त हो सकती है। इस समय वहाँ धन-प्रधान व्यवस्था है। इसकी जगह नीति-प्रधान, चरित्र-प्रधान व्यवस्था कहीं बेतरह होती है। यह सब मैंने इसलिए लिख दिया है, जिसमें आप समझ सकें कि चीन-जैसे विशाल देश के लिए मुझ-जैसे साधारण कर्मचारी के मन में भी कैसी योजना है। आप भी अपने राज्य में ऐसे शिक्षा-केन्द्र खोलें जिनमें बक-बक करने में समर्थ और सब कामों में असमर्थ प्रोफ़ेसर हों।

मुझे यह नहीं मालूम कि रोमा कहाँ है। किन्तु देश ही हमारे लिए इस समय सर्वोपरि है। किन्तु हम अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के महत्व को कभी भूल नहीं सकते। रोमा अगर वहाँ हो तो उसे यह पत्र दिखला दीजिएगा--विशेषतः ये पंक्तियाँ। मैं उसका ऋणी हूँ और अपनी सहानुभूतिपूर्ण सहायता से वह मुझे अभी और भी ऋणी बना सकती है।

फ़ातिमा कहाँ गई? उन्हें मैं विश्वास दिलाना चाहता था कि उदार बौद्धधर्म की शिक्षा के कारण तथा अपने व्यावहारिक ज्ञान के कारण जापान सभी धर्मों के प्रति असीम सहयोग का भाव रखता है। वह सभी धर्मों की वृद्धि चाहता है, पर उचित मानवता के आधार पर। मैं उनकी पूर्वीय-संघ की योजना को कितना श्रेयस्कर समझता हूँ, यह तो आप जानते ही हैं।

आपकी इला ने पता लगाकर उसी अँगरेज़ से अपना विवाह कर लिया होगा, जिसने उसका पूरा विश्वास करके उसे काग़ज़ों का वह बंडल दे दिया था, जो मैं समझता हूँ, अब भी उसी के पास है। उसी का पता लगाने के लिए वह आपको हिन्दुस्तान से बाहर ले गई थी। अगर उसका पता न लगा होगा तो संभव है वह आपके साथ लौट आवे और फिर देवी या दानवी बन जावे। असल में देवी बनने में भी दानवी स्वभाव अपना काम कुछ कम नहीं करता। आपके ऋषियों के क्रोध की प्रचंडता इसका प्रमाण है। जो हो, मैं चाहता हूँ कि अब आप कभी उसके, या अन्य किसी ऐसी सुन्दरी के, मोह-जाल में न फँसें।

अभी तो न जाने कितना जीवन हम लोगों के सामने है। मैं अन्त में यही आशा करूँगा कि आप कभी जापान आवेंगे या मैं ही कभी आपके देश में आऊँगा। तब हम लोग एक दूसरे से मिलकर विशेष प्रसन्नता पा सकेंगे।

आपका--कोगाको।

वह पत्र पढ़कर सोचने लगा--

जापान! हिन्दुस्तान के एक बड़े सूबे भर का जापान! वह हिन्दु-

स्तान की जन-संख्या के बराबर चालीस करोड़ लोगों के चीन को--विशाल चीन को--जुल्म की जंजीरों में, अन्याय और पराधीनता के पाश में --कसता चला जा रहा है और सारा संसार चुपचाप उसे देखता है ! अमरीका सौ वर्ष पहले के मनरो-सिद्धान्त की दुहाई देता है। कहता है, हमें उस गोलार्ध में दखल देने का अधिकार नहीं ! खूब ! कैसी बनावटी बातें हैं ! और यह कोगाको--क्या मजे की या कैसा कठिन दुःख पैदा करनेवाली बातें लिखी हैं इसने ? उन सबका यह कैसा जन-तंत्र की स्थापना का प्रयत्न है !

पर हम--हम--कर ही क्या सकते हैं ? कभी हिन्दुस्तान में भी शक्ति थी कि संसार के किसी भाग में भी अन्याय और अत्याचार हो तो वह दूर कर सकता था। अपनी महान् नैतिक शक्ति से उसने संसार के अधिकांश भाग को सुधारा था और उसे सचमुच मानवता की ओर ले गया था। कितने राजाओं ने सहज ही राज-पथ की झूठी शान छोड़कर सेवा-मार्ग को अपना लिया था। 'धिक् बलं क्षत्रिय-बलं ब्रह्मतेजो बलं बलं' भी उक्ति चरितार्थ हो गई थी--मानव-सेवा ही तो उस तेज की साधना है। पर हम अब क्या हो गये ? महाराज अशोक, चन्द्रगुप्त और विक्रमादित्य आदि क्या सचमुच यहीं पैदा हुए थे ?

और उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली।

किसी ने लिखा था--'स्त्रियों और बच्चों का बल रुदन में है।' स्त्रियों के लिए यह ठीक हो या न हो--सभी स्त्रियों के लिए तो किसी तरह ठीक है ही नहीं--किन्तु कुछ ऐसे राजकुमारों के लिए यह उपयुक्त हो गया है। तो क्या वे भी इन्हीं दो में से किसी के--या दोनों के--समान हो गये हैं ? चन्द्रसेन तो अपने को ऐसा ही मानते हैं।

४१

व्रजकिशोर अपनी आशा की पूर्ति सविता या सावित्री के साथ लौटे किन्तु चन्द्रसेन के लिए सुधा का स्पष्ट उत्तर लेकर। आकर उन्होंने जो सुना, उससे वे बहुत ही आश्चर्य में आये। वे रास्ते भर इसी दारुण चिन्ता में मग्न थे कि सुधा की यह बात कैसे राजकुमार को सुनाई जावेगी। आकर उन्होंने सुना कि वैसी ही बात चन्द्रसेन पहले ही अपने बारे में स्वयं तय कर बैठे हैं।

चन्द्रसेन ने अपने बड़े भाई भद्रसेन की सब बातों के उत्तर में एक ही बात कही——अगर गृहस्थाश्रम के ऊपर उठ सकने की आप-जैसे लोगों में शक्ति है, तो इससे वह आश्रम लाभान्वित हुए बिना नहीं रह सकता, क्योंकि आपका आदर्श सबके लिए उच्चतर रहेगा। किन्तु वह आश्रम ऐसा भी नहीं है जो प्रत्येक के लिए हो। मुझे उसमें जाने का अधिकार नहीं। उसके दरवाज़े मेरे लिए बन्द होने ही चाहिए। जब तक मैं आत्म-संयम से और अपने उद्योग से यह आत्म-विश्वास न पा लूं कि मैं भी किसी योग्य हूँ, तब तक उस आश्रम में जाकर मैं उसे कलंकित ही करूँगा। जो कुछ मैं कर चुका हूँ, वही मुझे कँपा देनेवाला है। उसने मेरी नस-नस को, बोटी-बोटी को मर्माहत किया है। अब और अधिक निर्लज्जता सँभाल सकने की शक्ति मुझमें नहीं है। मैं अभी किसी तरह विवाह नहीं कर सकता——चाहे जो हो।

सुधा ने कहा——मैंने यह निश्चय कर लिया है कि अपने साथ में ऐसा अन्याय सहन न करूँगी। कोई मेरे मन पर अत्याचार करके सुखी न हो सकेगा। मैं जब देख लूँगी कि राजकुमार सचमुच मनुष्य कहलाने योग्य हो रहे हैं, तभी मैं कुछ कर सकती हूँ——इससे पहले प्राण और जीवन रखते हुए ऐसा न कर सकूँगी। ऐसा करना केवल आत्म-हनन होगा——

अपने आपको मार डालने से भी बदतर होगा। जब मेरे पिता जी ने मुझे शिक्षित होने दिया है, तब अब वे ऐसा कैसे कर सकते हैं कि मुझसे यह चाहें कि मैं अपना शेष जीवन उस मनुष्य के जीवन के साथ मिलाऊँ जो ऐसे जीवन का घोर दुरुपयोग करने में निरन्तर लगा रहा है और अब भी लगा हुआ है। मैं सुधार की प्रतिज्ञा नहीं सुनना चाहती। ऐसी प्रतिज्ञाओं में मेरा विश्वास नहीं है। मैं इस सुधार का रूप अपनी आँखों से देखना चाहती हूँ। धर्म की सेवा, समाज की सेवा, देश की सेवा आदि की तरह साहित्य-सेवा की आड़ का भी और अधिक पतन के लिए उपयोग हो सकता है——यह मैं देख रही हूँ।

"इससे सुधा की प्रतिष्ठा मेरे मन में कहीं अधिक बढ़ गई।" चन्द्रसेन ने कहा, पर उनके हृदय में इससे वेदना भी बढ़ गई, यह उनके स्वर के ढंग ने ही लोगों को बतला दिया।

भद्रसेन को यह सब अपनी योजना के अनुकूल न जान पड़ा। कोगाको के पत्र को धूर्ततापूर्ण मानने पर भी वे उसकी औद्योगिक केन्द्रों की स्थापना-वाली बात से सहमत थे। उन्होंने उसे पढ़कर चन्द्रसेन से कहा——मैं तो चाहता हूँ कि तुम और सुधा दोनों——पहले ऐसे केन्द्रों के संगठन में लगकर उचित शक्ति प्राप्त कर लो। दूसरे देशों में ज्ञान-विज्ञान का सम्बन्ध व्यावहारिकता से जोड़कर युवकों को ऐसी शिक्षा दी जाती है जिसमें वे अपने पैरों पर खड़े होने के लिए तरह-तरह के व्यापारों, व्यवसायों और उद्योगों में लगकर स्वदेश की सच्ची उन्नति करते हुए अपनी उन्नति भी करें। उन्हें फ़ौजी शिक्षा भी अनिवार्य रूप से दी जाती है। यहाँ तो वही मनमानी एकाङ्गी पुस्तकीय शिक्षा दी जाती है, फुटबाल, टेनिस आदि खेलना सिखा दिया जाता है और कुछ चाहें तो संगीत की शिक्षा का प्रबन्ध कर दिया जाता है। खद्दर ऐसा कुटीर-व्यवसाय भी उचित रूप नहीं धारण कर पाता। नतीजा यह है कि तरह तरह की उपाधियों के भार से दबे हुए यहाँ के युवक निवेदन-पत्र लिये हुए दफ़्तर-दफ़्तर की खाक छाना करते हैं। अगर तीस-चालीस रुपयों की भी कोई जगह

होती है तो एक जगह के लिए सैकड़ों नहीं हज़ारों अर्ज़ियाँ आ जाती हैं और उनके साथ परीक्षा देने के लिए 'फ़ीस' भी। वे इस तरह और भी लूटे-खसोटे जा रहे हैं। संसार में किसी भी अन्य देश की ऐसी दुर्गति नहीं है।

चन्द्रसेन ने उनकी कुछ बातों को--विशेषतः अन्तिम बात को--अतिशयोक्ति-पूर्ण समझा। पर वे इस शर्त पर उनके औद्योगिक कार्यों में सहयोग देने को तैयार हो गये कि वे भी उनकी साहित्यिक योजना को सफल बनाने में पूरी सहायता दें।

एक साल बाद।

चन्द्रसेन के सुप्रसिद्ध पत्र 'विश्वसंघ' में छपी रिपोर्ट का एक अंश सुधा बहुत ध्यान से पढ़ रही थी।.... इसबीच महाराज प्रसन्नसेन का कीर्तन-प्रेम बिलकुल बन्द हो गया। वे एक साधना-मन्दिर में जा बैठे थे। वहीं एक दिन प्रातःकाल उन्होंने अपना शरीर छोड़ा। अन्तिम समय कुछ लोगों ने चाहा था कि कीर्तन-मंडली बुला दी जाय। पर उन्होंने तुरन्त उत्तर दिया--मैंने जो साधना-पथ देख लिया है उससे अब विचलित नहीं हो सकता। कैसा कीर्तन हमें सुनना है और वह कहाँ से सुनाई देता है, यह सब अब मैंने जान-समझ लिया है।

और बहुत शान्ति के साथ उनके प्राण अलग हुए।

तब से भद्रसेन ही राज-काज पूर्णतः चला रहे हैं। पर उन्होंने उत्तर-दायित्वपूर्ण राज-संचालन-समिति की स्थापना में स्वयं सहायता दी है। इससे उनका भार बहुत हलका हो गया है।.... (सदस्यों के नाम, काम आदि दिये गये थे) उन्हें इसका खेद है कि कृष्णकुमार ने कोई पद या सदस्य बनना भी स्वीकार नहीं किया... उनके औद्योगिक केन्द्र सुव्यवस्थित हो रहे हैं। भाँति-भाँति की शिक्षा के साथ-साथ अनेक प्रकार की वस्तुओं को बनाकर उनका देश भर में प्रचार किया जा रहा है.... (वस्तुओं के नाम, प्रचार आदि का विवरण).... राजकुमार चन्द्रसेन ने भी इन कामों में बहुत कुछ सहायता दी। इधर उनका स्वास्थ्य बिलकुल ठीक हो गया है। वे बहुत प्रसन्नतापूर्वक अपने 'विश्व-संघ' की सफलता के

लिए भी अपना बहुत-सा समय दे रहे हैं। इसी कारण अनेक राज्यों की सक्रिय सहानुभूति अब हमें मिल रही है।... बड़ी राजमाता महाराज भद्रसेन को और छोटी राजमाता राजकुमार चन्द्रसेन को पूरी सहायता दे रही हैं।.... शिवपुर राज्य की सहायता भी विशेष उल्लेखनीय है। (इस सहायता का विस्तृत वर्णन था।)

यह सब पढ़कर और अपने विश्वसनीय लोगों से--जिनमें प्रतापादित्य और सविता अग्रगण्य हैं--चन्द्रसेन के बारे में सन्तोषप्रद समाचारों के पाते रहने से वह भी विशेष प्रसन्न हो उठी।

इसी समय एक अन्य दैनिक पत्र को खोलकर उसने देखा--एक कोने में बड़े-बड़े अक्षरों में छपा था--राजकुमार ललितसेन ने सुप्रसिद्ध धर्म-सेविका रोमा से अपना विवाह कर लिया। यह विवाह उस नये क़ानून के अनुसार हुआ है जिसमें एक धर्मवाले लोग दूसरे धर्मवालों के साथ बिना किसी के कोई धर्म छोड़े अपना विवाह कर सकते हैं।

एक मास और बीत गया तब कृष्णकुमार ने शिवपुर में आकर 'औद्योगिक केन्द्रों के केन्द्र' का उद्घाटन किया। इसके अन्त में उन्होंने एक दिन सुधा से मिलकर कहा--देखिए, आपने अपने जीवन के ढंग से यह सिद्ध कर दिया कि शिव की प्राप्ति के लिए पार्वती को तपस्या करना चाहिए तो पार्वती की प्राप्ति के लिए शिव को भी उससे कम तपस्या न करनी चाहिए। आपके कुछ पत्रों से तो चन्द्रसेन ने यही समझा था कि हिन्दुस्तान आते ही आप उनका स्वागत करने पहुँच जावेंगी। आपने एक आदर्श रख दिया।

सुधा अमृतमयी हँसी के साथ बोली--आप चाहें जो कुछ कहिए, मैं उसका क्या उत्तर दे सकती हूँ। आप जान ही नहीं सकते कि आदर्श किसने रक्खा है। वह जाने दीजिए, अब आपकी मेरे लिए क्या आज्ञा है, यह मैं स्वयं आपसे सुनना चाहती हूँ।

कृष्णकुमार का सम्पूर्ण शरीर सिहर उठा--तो क्या समय-समय पर जो एक अज्ञात मधुमयी वेदना उनके मन में उत्पन्न हो जाती

थी उससे सचमुच सुधा के मन में भी को सजीव तरंगें उठी थीं---या वह वेदना सुधा की मन की ऐसी तरंगों का प्रतिफल ही होती थी।

वह एकाएक उत्तर न दे सका। कुछ समय अपने को सँभालने में लग गया। सुधा से भी यह छिपा न रहा और जान पड़ता है इससे उसने अपने को वैसा ही कृतकार्य समझा जैसा कोई भक्त अपने आपको संपूर्णतः समर्पित करके होता है। उसका चेहरा चमक उठा था।

कृष्णकुमार ने कहा--चन्द्रसेन ने कष्ट सहन किया है। उनके पापों का प्रक्षालन हो गया। उनका अर्धांग जब सुधा के रूप में होगा तब शेष अंग में फिर कभी किसी विष का प्रवेश न हो सकेगा।

सुधा ने एक बार पूरा साहस करके कहा---तो आप लोग अपनी रक्षा करने के लिए भी अमृतमयी की खोज में रहते होंगे ?

कृष्णकुमार ने हँसकर उत्तर दिया---हम जिस महाव्रत के व्रती हुए हैं, जिस कठिन अनुष्ठान में लगे हैं, वही सब बुराइयों से हमारी बहुत-कुछ रक्षा करता है। और किसी की हम खोज कर सकें या किसी को व्यक्तिगत रूप से अपना सकें, ऐसे सौभाग्य से हमें वंचित रहना ही पड़ेगा। प्रत्येक देश को ऐसे समय में होकर गुज़रना पड़ा है। आप-जैसी देवियाँ हमें जो सहायता दे रही हैं और देती रहेंगी उसी से हमें उचित स्फूर्ति मिलती जावेगी !

सुधा ज़ोर से हँस पड़ी---न हँसती तो हृदय चकनाचूर हो जाने का भी भय था---और बोली---कृपाकर मुझे देवियों में सम्मिलित न कीजिए। देवियों की संख्या आप लोगों के पास यथेष्ट है। अभी ललित ने एक देवी का पाणिग्रहण किया था।

कृष्णकुमार---महाराज प्रभाकरदेव एक सीमा से दूसरी सीमा पर पहुँच गये। हम लोगों ने समझा था कि रोमा से ललित की घनिष्ठता होते देख वे उनका अपने राज्य से कोई भी सम्बन्ध न रहने देंगे, पर अन्त में हुआ इसका बिलकुल उलटा। मानवप्राणी अत्यन्त रहस्यमय है। स्वयं उन्होंने यह विवाह करवाया है।

सुधा--अच्छा, आप मुझे इस झमेले में क्यों घसीटना चाहते हैं?

कृष्णकुमार--विश्वास कीजिए, यदि मैं इसे अब भी आपके लिए झमेला समझता तो ऐसी बात कभी कहता ही नहीं। अब चन्द्रसेन के साथ आप सुखी होंगी और उन्हें भी सुखी कर सकेंगी। तब सुधा ने कहा--आप चाहे जो कीजिए, आपको सब शोभा देता है। दूसरे किसी के कहने से मैं यह बात न मानती, पर आपके द्वारा दिया हुआ यह दंड मैं स्वीकार करती हूँ।

और वह तेज़ी से भीतर चली गई।

कृष्णकुमार के मन के सामने एक और समय का ऐसा ही दृश्य घूम गया। वह भी नाटक के पर्दे की भाँति निर्जीव न था। उसमें भी ऐसी ही सजीवता थी।

वह उठकर खड़ा हो गया। तब उसकी दृष्टि सामने की दीवाल पर जा पड़ी। उसने देखा वह उन लोगों के चित्रों से भरी हुई है जिन्होंने स्वंत्रता की देवी के लिए अपने प्राणों का हँसते हँसते उत्सर्ग किया है। दूसरी दीवाल को देखा, उस पर भी ऐसे ही चित्र लटक रहे थे। तीसरी और चौथी दीवालें भी ऐसी ही थीं।

कृष्णकुमार के ओठों पर एक करुण-मधुर मुसकान खिंच गई। उसने मन ही मन कहा--मैंने सुधा को सचमुच दंड दिया है।

किन्तु उसके हृदय ने अनुभव किया कि उसकी आत्मा 'जीवन-ज्योति' से जगमग हो उठी थी।

Printed and Published by
K. Mittra, at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

अब तक प्रकाशित पुस्तकें

१ क्रान्तिकारी
२ रूसी कहानी संग्रह
३ समरक़ंद की सुन्दरी
४ पृथ्वी का इतिहास
५ चक्रभेद
६ दैनिक जीवन और मनोविज्ञान
७ मेरा संघर्ष
८ आधुनिक जापान
९ सूरसंदर्भ
१० रामकृष्णचरितामृत
११ महान् अपराधी
१२ मृत्युकिरण
१३ अभिसारिका
१४ मोपासाँ की कहानियाँ
१५ ताया
१६ दुर्गेशनन्दिनी
१७ हिन्दी के निर्माता
१८ डिक्टेटर
१९ बुभुक्षा
२० नरक
२१ निरपराधी
२२ छिपा महल
२३ वंचिता
२४ हंसराज की डायरी
२५ हिन्दी के वैष्णव कवि
२६ समस्या का हल
२७ नया क़दम
२८ रहस्य-भेद
२९ मेरे अन्त समय के विचार
३० प्राचीन तिब्बत
३१ आना केरेनिना
३२ मृत्युलोक की झाँकी
३३ मिस्टर चर्चिल
३४ जीवन-ज्योति